फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ : शिल्प और सार्थकता

हरिकृष्ण कौल

भारतीय भाषा केन्द्र की एम० फिल० की उपाधि के
लिए प्रस्तुत लघु शोध - प्रबन्ध

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली
1978

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
CENTRE OF INDIAN LANGUAGES

NEW MEHRAULI ROAD
NEW DELHI-110067

Dated 19.1.1979

Certified that the material in this Dissertation entitled "PHANISHWARNATH RENU KI KAHANIYAN : SHILPA AUR SARTHAKATA" by Shri Harikrishna Kaul has not been previously submitted for any other degree of this or any other University.

Chairman,
Centre of Indian Languages,
Jawaharlal Nehru University,
New Delhi-110067

(Namwar Singh)
Supervisor
&
Dean
School of Languages
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

प्राक्कथन

जब मैंने पहलीबार फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल' पढ़ा तो मुझे लगा कि मैं कोई उपन्यास नहीं पढ़ रहा हूँ बल्कि एक के बाद एक मानवीय स्थिति को अपनी आंखों के सामने घटित होते देख रहा हूँ। आंखों के सामने घटित होते देख रहा हूँ —— यह कहना ही शायद काफी नहीं होगा। मुझे लगा कि मैं जीवन की धड़कन को, उसके संगीत को, हास-परिहास को, उसकी चीख-ओ-पुकार को, अपने कानों से सुन रहा हूँ। दर्शन और श्रवण ही नहीं, मैं गंध, स्पर्श और स्वाद के स्तर पर भी लेखक के अनुभव का भागीदार बन रहा हूँ। उसके बाद मुझे, पुस्तक रूप में अथवा पत्र-पत्रिकाओं में, रेणु की जो भी रचना उपलब्ध हुई उसे मैंने इस महान कलाकार का प्रसाद समझकर पढ़ा। मैं अत्यन्त विनम्रता से यह कहना चाहूँगा कि मैंने रेणु की प्राय: सभी रचनाएँ – उपन्यास, कहानियाँ, रिपोर्ताज, 'रेखा-चित्र', विभिन्न पत्रिकाओं में लिखे स्तम्भ, वक्तव्य, यत्र-तत्र प्रकाशित पत्र एक बार नहीं, अनेक बार पढ़े और हर बार उनमें कुछ न कुछ पाता रहा।

क्या पाता रहा ? यह कहना ज़रा कठिन है। रेणु के कृतित्व के साथ मेरा सम्बन्ध केवल एक पाठक या आलोचक का नहीं था। यह एक सिद्ध कथा-शिल्पी से एक साधक कथाकार का रिश्ता भी था। रेणु की रचनाएँ पढ़कर कभी- कभी मुझे एक अजीब सी स्पर्धा युक्त अनुभूति होती कि काश ये रचनाएँ मैंने लिखी होती। वास्तव में सृजन की सहधर्मिता, समस्याएँ और उनके समाधान ही वे कुछ सूत्र थे जिन्होंने मुझे रेणु की रचनाओं से बाँधा था। सृजन की प्रक्रिया की तरह ही ये सूत्र भी उलझे हुए थे और इनको सुलझाकर एक दूसरे से अलगाना तथा प्रत्येक की अलग से परीक्षा करना मेरे लिये सरल कार्य नहीं था। अत: मुझे यह जोखिम उठाने का कभी भी साहस नहीं हुआ।

परन्तु गत वर्ष जब मुझे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योग्यता - सुधार - योजना के अन्तर्गत जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में एम० फिल० और पी-एच०डी० करने का सुअवसर मिला, मैंने माननीय डा० नामवर सिंह से प्रोत्साहन पाकर इस जोखिम को उठाने का फैसला कर ही लिया जिसे मैं

इतने वर्षों से टालता रहा था । मैंने एम०फिल० के लघु-शोध-प्रबंध के लिये रेणु की कहानियों के अध्ययन को विषय के रूप में चुना । इस प्रकार इस लघु-शोध-प्रबंध में मैंने न केवल रेणु के कथा संसार को समझने का प्रयास किया है, अपितु अपनी रुचि का विश्लेषण और उन सूत्रों की परीक्षा का भी प्रयत्न किया है, जिन्होंने मुझे रेणु साहित्य के साथ बाँधा है ।

रेणु के साहित्य और विशेषतः उनकी कहानियों के विषय में अभी तक कोई उल्लेखनीय शोध-कार्य नहीं हुआ है और न ही उनके मूल्यांकन का कोई गम्भीर प्रयास हुआ है । विश्वविद्यालयों में विभिन्न परीक्षाओं और उपाधियों के लिए कुछ शोध-प्रबंध अथवा लघु-शोध-प्रबंध अवश्य लिखवाए गये हैं जिनमें से कुछेक प्रकाशित भी हुए हैं । सुश्री कुसुम सोफ्त का 'फणीश्वरनाथ रेणु की उपन्यास कला' (कुसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968), श्री पूर्णदेव का 'रेणु का आंचलिक कथा-साहित्य' (आशा प्रकाशन गृह, नयी दिल्ली, 1973) तथा श्रीमती राज रैना का 'कहानीकार फणीश्वरनाथ 'रेणु'' (सीमान्त प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1978) ऐसे ही प्रकाशित शोध-ग्रंथ हैं । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के ग्रंथों की अपनी सीमाएँ होती हैं । एक निश्चित अवधि के भीतर अपने कार्य को पूरा करने की विवशता शोधार्थी को विषय की गहराई में जाकर उसकी बारीकियों के साथ उलझने का अवसर नहीं देती है । फिर भी यदि इन शोधार्थियों को पर्याप्त तथ्य उपलब्ध हुए होते, अथवा विषय के प्रति इनका 'एप्रोच' पंडिताऊ, शास्त्रीय या मशीनी न होकर एक सहृदय और सच्चे जिज्ञासु का होता तो सम्भव है कि उनकी खोज और स्थापनाएँ इतनी त्रुटिपूर्ण और भ्रामक नहीं होती जितनी कि वे हैं ।

'फणीश्वरनाथ रेणु की उपन्यास कला' में कुसुम सोफ्त ने रेणु की उपन्यास कला का विवेचन न करके उनके पाँच उपन्यासों में पेश की गयी समस्याओं का मशीनी ढंग से उल्लेख किया है और उपन्यासों में वर्णित तीज-त्योहारों, भोज्य पदार्थों, परिवहन के साधनों, जाति-वेशों, वस्त्रों, आभूषणों आदि तथा इनमें प्रयुक्त लोक गीतों, फिल्मी

गीतों, मुहावरों और लोकोक्तियों, ग्रामीण शब्दों, अंग्रेज़ी शब्दों, उर्दू शब्दों आदि की सूचियाँ मात्र दी हैं । ग्रंथ में शोध-कर्ता की कोई प्राक्कल्पना या दृष्टि नहीं मिलती ।

'रेणु का आँचलिक कथा साहित्य' में पूर्णदेव ने आँचलिकता के आलोक में (या अन्धकार में ?) रेणु के पाँच उपन्यासों और दो कथा-संग्रहों, 'ठुमरी' तथा 'आदिम रात्रि की महक' , पर चर्चा की है । लेखक 'आँचलिकता' से इस क़दर आक्रान्त है कि वे रेणु के कथ्य और शिल्प की प्रत्येक विशिष्टता को 'आँचलिकता' कहकर अपने कर्तव्य से मुक्त होते हैं । और फिर उन्होंने अनेक स्थलों पर दूसरों के मन्तव्यों और शब्दों का बिना उद्धरण चिह्नों का प्रयोग किए, या उनके प्रति आभार प्रकट किए, या कम से कम इस बारे में कोई संकेत किए, व्यवहार करके अद्भुत 'साहस' का परिचय दिया है । पुस्तक के पृष्ठ ४: पर उन्होंने रेणु की कहानियों के विषय में जो कुछ लिखा है वह अक्षरश: राजेन्द्र यादव के सम्पादन में 'नये कहानीकार' पुस्तकमाला के अन्तर्गत राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'फणीश्वरनाथ रेणु : श्रेष्ठ कहानियाँ' संग्रह की प्रस्तावना 'प्रमुख स्वर' से नकल किया गया है ।

राज रैना की पुस्तक 'कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु' यद्यपि 1978 में प्रकाशित हुई है, इसमें केवल रेणु के प्रथम कहानी-संग्रह 'ठुमरी' तथा रेणु द्वारा सम्पादित 'हाथ का जस... ' में संकलित कहानियों का कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा शैली, जीवन दृष्टि जैसे पारम्परागत 'तत्वों' के आधार पर विवेचन किया गया है और हर 'तत्व' में रेणु की 'आँचलिकता' खोजी गयी है । खेद की बात है कि पुस्तक के प्रकाशन में अपराध की हद तक लापरवाही बरती गयी है । 'प्रस्तावना' में लिखा गया है कि '' रेणु पर संदर्भ-ग्रंथों का अभाव स्वाभाविक है । क्योंकि अभी वे लिख रहे हैं और उन पर होने वाला शोध अन्तिम नहीं हो सकता ।'' और नीचे जनवरी, 1978 की तिथि दी गई है — जब रेणु जी का निधन हुए लगभग नौ महीने हो चुके थे ।

फणीश्वरनाथ रेणु के साथ चिपका 'आंचलिक' लेबल उनके सही मूल्यांकन में बाधा बन गया है । उनके विषय में जिस 'आंचलिकता' का ज़ोर शोर से ढोल पीटा जा रहा है, उसे मैं स्थानीय रंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता । इस स्थानीय रंग का उपयोग न्यूनाधिक मात्रा में सभी यथार्थवादी कथाकार अपनी बात को एक प्रामाणिक संदर्भ देने के लिये करते आये है । अतः इस लघु-शोध-प्रबंध में 'आंचलिकता' के किसी आग्रह या अनुकूलन से मुक्त होकर रेणु के कथा साहित्य को समझने का प्रयास किया गया है । प्रबंध की पूर्व पीठिका में स्वतन्त्रता के पश्चात हिन्दी कहानी और नयी कहानी आन्दोलन का यत्किंचित परिचय देकर रेणु की कहानियों की साहित्यिक पृष्ठभूमि दी गयी है । प्रथम अध्याय में रेणु की विभिन्न संग्रहों में संकलित तथा पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी कहानियों का विवरण दिया गया है —— उन आरंभिक कहानियों का भी जो 'विश्वमित्र' कलकत्ता के 1946 के अनेक अंकों में छपी थी । कहानियों का वर्गीकरण करके रेणु के परिवेश और पात्रों की भी चर्चा की गयी है, और रेणु के साथ लगे 'आंचलिक' विशेषण के औचित्य पर बहस की गयी है । द्वितीय अध्याय में रेणु की कहानियों के 'स्ट्रक्चर' और 'टेक्स्चर' का विश्लेषण करके उनकी शिल्पगत विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। साथ ही यह दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार रेणु ने अपनी कहानियों में अन्य साहित्यिक विधाओं और साहित्येतर कलाओं की टेकनीक का समावेश करके उन्हें विशिष्ट कलात्मकता प्रदान की है । इसी अध्याय में रेणु की भाषा पर भी विचार किया गया है जिसने उनके कृतित्व को सबसे अधिक विवादास्पद बनाया है । तृतीय और अन्तिम अध्याय में रेणु की कहानियों की सार्थकता की परीक्षा की गयी है; और उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के अनेक अन्तर्विरोधों की ओर संकेत करके उनकी राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि की समीक्षा की गयी है ।

फिर भी रेणु की कहानियों में कथ्य और शिल्प के स्तर पर जो जो विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, उन सभी का विवेचन इस लघु-शोध-प्रबंध में नहीं

हो पाया है । इसे मैं अपनी सीमा तो मानता ही हूँ, किन्तु इसका एक कारण नियत समय में कार्य पूरा करने की मजबूरी और प्रबंध का सीमित कलेवर भी हो सकता है ।

अपने निर्देशक तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भाषा संस्थान के अधिष्ठाता आदरणीय डा० नामवर सिंह के प्रति अपना आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ ? उन्होंने न केवल मुझे यह काम हाथ में लेने के लिये प्रेरित किया, अपितु पग-पग पर मुझे, एक प्रकार से नहीं अनेक प्रकार से, प्रोत्साहित करते और मेरा मार्ग दर्शन करते रहे । भारतीय भाषा केन्द्र के अन्य अध्यापकों, विशेषकर डा० केदार नाथ सिंह, डा० सावित्री चन्द्रा तथा डा० मैनेजर पाण्डेय का भी मैं आभारी हूँ जिनसे मुझे आशा से अधिक सौहार्द और सहयोग मिला । अपने मित्र श्री सुरेश शर्मा को धन्यवाद देना भी अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनसे मुझे रेणु के जीवन और रचनाओं के विषय में अनेक सूचनाएँ मिलीं ।

— हरिकृष्ण कौल

नयी दिल्ली,
25 दिसम्बर, 1978

अनुक्रम

पूर्वपीठिका : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी और रेणु 1 - 20

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी —— नयी कहानी —— नयी कहानी और यथार्थवाद —— नयी कहानी और रेणु ।

अध्याय - 1 : रेणु का कथा-जगत् 21 - 46

कहानियों का विवरण —— कहानियों का वर्गीकरण —— ग्राम संस्कृति के प्रति मोह —— आम आदमी का सुख दुःख —— राजनीतिक कहानियाँ —— फुटकल कहानियाँ —— रेणु का परिवेश —— पात्र —— रेणु और 'आँचलिकता' ।

अध्याय - 2 : रेणु का कथा-शिल्प 47 — 89

कहानियों की संरचना —— मुख्य नाद : सहायक नाद —— ठुमरी - धर्मा कहानियाँ —— कहानियों के टेक्चर : बिम्ब नाद गंध —— मिथक और मोटीफ —— दृष्टि बिन्दु —— भाषा ।

अध्याय - 3 : रेणु की कहानियों की सार्थकता 90 - 116

रेणु का यथार्थ बोध —— प्रेमचन्द की परम्परा और रेणु —— रेणु और राजनीति : अन्तर्विरोध ।

परिशिष्ट : संदर्भ ग्रंथ सूची 117-120

पूर्व पीठिका

स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी और रेणु

स्वर्गीय फणीश्वरनाथ रेणु ने सन् 1945 के आस-पास लिखना शुरू किया था । फिर भी उनका रचना-काल मुख्य रूप से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की तीन दशक है । अप्रैल 1977 में उनकी मृत्यु तक उनके पाँच (या छः ?) उपन्यास और तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए । इनके अतिरिक्त उन्होंने और भी बहुत कुछ लिखा है और उनके दो रिपोर्ताज गत वर्ष मरणोपरान्त पुस्तक रूप में छप गये ।

रेणु को सब से अधिक ख्याति उनकी पहली औपन्यासिक कृति 'मैला आँचल', और उससे कुछ कम मात्रा में दूसरे उपन्यास 'परती : परिकथा' से मिली । प्रायः ऐसा होता है कि जो लेखक उपन्यासकार के रूप में साहित्य में पदार्पण करे और पदार्पण करते ही सफलता और ख्याति पाये, उसकी कहानियों को उचित महत्व नहीं मिलता और उनकी बहुत कम चर्चा होती है । किन्तु रेणु के साथ ऐसा नहीं हुआ । उनकी कुछ कहानियाँ, जैसे 'रस प्रिया' , 'तीसरी कसम अर्थात मारे गए गुलफाम', 'एक आदिम रात्रि की महक' , 'रेखाएँ : वृत्तचक्र' उनके उपन्यासों से कम चर्चित नहीं हुईं । (फिल्माए जाने के कारण 'तीसरी कसम' कदाचित् रेणु की सर्वाधिक चर्चित रचना है ।)

रेणु की कहानियों को जो मान्यता और लोक-प्रियता मिली उसके मूल में उनकी 'अपील' और कलात्मकता तो थी ही, लेकिन उसका एक कारण तत्कालीन साहित्यिक वातावरण भी था । कहानी विधा का यह दुर्भाग्य रहा है कि उसे बहुत कम गम्भीर अध्ययन के योग्य समझा जाता रहा । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही हिन्दी में इस उपेक्षित विधा को एक अनुकूल वातावरण मिला । उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि छोटी कहानी (शार्ट स्टोरी) ही साहित्य की केन्द्रीय विधा बन गयी । नयी कहानी नाम से एक कथा-आन्दोलन चला ; और जो कहानी केवल मनोरंजन के लिये पढ़ी जाती थी, उसे पहली बार आलोचकों ने गम्भीर साहित्यिक अनुशीलन के योग्य समझा । अतः

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य को स्वतन्त्रता पश्चात् की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों तथा तत्कालीन कथा-आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में ही अच्छी तरह समझा जा सकता है ।

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी :

अगस्त 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति भारतीय इतिहास के आधुनिक काल की जल विभाजक (वाटर शेड) घटना है । केवल इसलिये नहीं कि यह उपनिवेशवाद के अन्त और करोड़ों भारतीयों के लिये दासता से मुक्ति का एक सुखद अनुभव था । बल्कि इसलिये भी कि इस सुखद अनुभव के साथ ही, एक प्रकार से उसकी परिणति के रूप में दो दुखद अनुभव भी जुड़े है । पहला अनुभव विभाजन की विभीषिका का था जिसके फलस्वरूप लाखों लोग अनेक पीढ़ियों से संजोयी अपनी घर-गृहस्थी के साथ-साथ अपने चिर संचित मूल्यों और मान्यताओं को भी छोड़ने पर विवश हो गये । लोग अपने घरों से ही नहीं बल्कि अपनी वैचारिकता और मानसिकता की ज़मीन से भी उखड़ गये । दूसरा दुखद अनुभव मोह भंग का था । स्वतंत्रता के बाद भी शोषण, चोर बाज़ारी, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद का जो चक्कर चलता रहा उसके फलस्वरूप निम्न और निम्न-मध्य वर्ग को भारी आघात लगा । जिस आजादी को लाख दुःखों की एक दवा समझ लिया गया था वह एक बहुत बड़ा फ्रॉड और धोका साबित हुई । बुद्धिजीवियों के एक बहुत बड़े वर्ग को एहसास हो गया कि यह स्वतन्त्रता-आन्दोलन एक जन-आन्दोलन की अपेक्षा राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की अपने हितों के लिये छेड़ी गई लड़ाई अधिक था । व्यापक परिप्रेक्ष्य में यदि देखें तो भारत की स्वाधीनता भी अपने में कोई अलग-थलग घटना नहीं थी । सन् 1945 में दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हो गया था । हीरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराकर भीषण नर-संहार किया गया था । अमरी तौर पर विजय प्राप्त करने के बावजूद ब्रिटिश साम्राज्य भीतर से विशृंखलित हो गया था और उसके पास अपने उपनिवेशों

को मुक्त करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहा था । सोवियत रूस का उदय एक महान शक्ति के रूप में होने के साथ ही पूर्वी योरोप के देशों में समाजवाद की स्थापना हुई । भारत की स्वाधीनता के बाद ही सन् 1949 में चीन में जनवादी समाजवादी शासन की स्थापना हुई । कुल मिलाकर वर्तमान शताब्दी के पाँचवें दशक के अन्तिम कुछ वर्ष काफी उथल पुथल के वर्ष थे । बहुत कुछ तबदील हो रहा था, पुराना बहुत कुछ नष्ट हो रहा था, तथा बहुत कुछ उभर रहा था । बदली हुई परिस्थितियाँ अपने अनुकूल साहित्यिक विधाओं या रूपों की माँग करती हैं और साहित्य की कोई एक विधा युग की केन्द्रीय विधा के रूप में उभरती है । पाँचवे दशक के अन्तिम वर्षों में कहानी ही केन्द्रीय विधा के रूप में जड़ जमाने लगी । क्योंकि इसमें कविता की अपेक्षा समय के यथार्थ को पकड़ने की अधिक क्षमता थी । उपन्यास द्वारा भी ऐसा हो सकता था । परन्तु लेखक लम्बे उपन्यासों की अपेक्षा छोटी कहानियों के द्वारा ही युग की अस्थिर और पलपल परिवर्तित परिस्थितियों के प्रति अपनी तुरंत प्रतिक्रिया अधिक कुशलता से व्यक्त कर सकते थे । परिणाम यह हुआ कि इस युग में हिन्दी में ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी कहानी आन्दोलन चले । चन्द — एक कथाकारों के स्थान पर कथा-पीढ़ियों का आविर्भाव हुआ । इन कथा आन्दोलनों और कथा - पीढ़ियों के पीछे वह रचना दृष्टि काम कर रही थी जिसे यथार्थबोध, समय सापेक्षता, सही सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि, प्रगतिशीलता, कोई भी नाम दिया जा सकता है ।

हिन्दी में प्रगतिशील आन्दोलन का सूत्रपात सन् 1936 में ही प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन से हुआ था । किन्तु पाँचवे दशक के अन्तिम वर्षों में इसने एक व्यापक आन्दोलन का रूप धारण किया जिसमें हिन्दी के डा० रामविलास शर्मा, डा० नामवर सिंह, शिवदान सिंह चौहान, अमृत राय, नागार्जुन आदि लेखक, उर्दू के कृश्न चन्दर, ख्वाजा अहमद अब्बास, मखदूम मोहीउद्दीन, सरदार जाफरी, राजेन्द्र सिंह बेदी ; पंजाबी की अमृता प्रीतम ; बंगला के माणिक

बंधोपाध्याय, तेलगू के महाकवि श्री श्री, मलयालम के वल्लाथोल नारायण मैनन, कश्मीरी के दीना नाथ 'नादिम' आदि विभिन्न भाषा भाषी साहित्यकार सम्मिलित थे । इसी प्रगतिशील रचनादृष्टि को लेकर उर्दू में एक कथा-आन्दोलन भारत-पाक सीमा के आर-पार चला जिसने सआदत हसन मंटो के 'टोबा टेक सिंह' की तरह ही इस अप्राकृतिक राजनीतिक विभाजन को एक सूक्ष्म स्तर पर रद्द कर दिया । इस आन्दोलन में भारत के कृश्न चन्दर, ख्वाजा अहमद अब्बास, राजेन्द्र सिंह बेदी, इस्मत चुगताई, बलवंत सिंह तथा पाकिस्तान के मंटो, अहमद नदीम कासिमी, इब्राहीम जलीस आदि सभी शामिल थे । इसी कथा आन्दोलन के छंडे तले, जैसा कि मोहन राकेश ने लिखा है, मुमताज़ मुफ्ती, रामानन्द सागर, कुर्अतुलैन हैदर और महेन्द्र नाथ जैसे कहानीकार भी आ गये थे जिनकी प्रगतिशीलता संदिग्ध हो सकती है ।[1] भारत में इस आन्दोलन के नेता कृश्न चन्दर में भी उनकी उद्घोषित प्रगतिशीलता बावजूद सस्ती भावुकता से ओत-प्रोत रोमानियत मिलती है जिसकी ओर डा० नामवर सिंह ने भी संकेत किया है ।[2] परन्तु फिर भी हिन्दी में सन् 1950 के आसपास उदित मोहन राकेश, भीष्म साहनी, अमरकान्त, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, कमलेश्वर , निर्मल वर्मा, शेखर जोशी आदि कहानीकारों ने उर्दू के इन कहानीकारों से किसी और रूप में न सही, इस रूप में अवश्य प्रेरणा प्राप्त की कि कहानी लेखन को एक आन्दोलन के रूप में चलाया जा सकता है ।

नयी कहानी :

आधुनिक काल में अधिकांश साहित्यिक आन्दोलन पत्रिकाओं के सहारे ही चले हैं । कथा-आन्दोलनों के बारे में यह बात और भी सही है क्योंकि छोटी कहानियाँ

1- बकलम खुद -(राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली - 1974), पृ० 15.

2- डा० नामवर सिंह - 'कहानी : नयी कहानी' (लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - द्वितीय संस्करण, 1973), पृ० 21.

मुख्य रूप से पत्र-पत्रिकाओं की माँग को पूरा करने के लिये ही लिखी जाती है । हिन्दी कहानी का उद्भव भी 'सरस्वती' और 'इन्दु' पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ जुड़ा हुआ है । इसी प्रकार सन् 1950 के आस-पास हिन्दी में जो कथा-आन्दोलन चला उसको चलाने में 'कहानी', 'नई कहानियाँ', 'सारिका' जैसी कहानी पत्रिकाओं का बहुत बड़ा हाथ है । यह भी कहा जा सकता है कि ऐसी पत्रिकाओं का प्रकाशन जिनमें केवल कहानियाँ ही हों, आन्दोलन का ही एक पक्ष था । हिन्दी में इस कथा आन्दोलन के शुरू होने के बाद 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', 'धर्मयुग' ('एक कथा दशक' सिलसिले का आयोजन करके) आदि पत्र-पत्रिकाओं तथा 'रूप', 'संकेत' आदि संकलनों ने इसके विकास और प्रसार में योग दिया ।

हिन्दी कहानी में यद्यपि सन् 1950 से ही नयी प्रतिभाओं का उदय होने लगा था फिर भी इस नये कथा लेखन को, जिसने बाद में नयी कहानी की संज्ञा पायी, इलाहाबाद से श्रीपत राय के सम्पादन में 'कहानी' मासिक के पुन-र्प्रकाशन से एक आन्दोलन का रूप मिला । जनवरी 1955 में इस पत्रिका के नव-वर्ष विशेषांक का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता और हिन्दी कहानी, दोनों के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व घटना थी । चार सौ पृष्ठों का यह विशेषांक वास्तव में एक कथा-कोश था जिसमें हिन्दी के जाने माने कहानीकारों की कहानियों, विदेशी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियों के अनुवादों के साथ-साथ हिन्दी के नये उभरते कहानी-कारों की रचनाएँ भी संकलित थीं । जैसे रामकुमार की 'छुट्टियाँ', मार्कण्डेय की 'बातचीत', कमलेश्वर की 'कस्बे का आदमी', कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे' तथा ओंकार नाथ श्रीवास्तव की 'सर्वहारा' । पत्रिका के प्रकाशन के एक वर्ष का लेखा जोखा लेते हुए सम्पादकीय में कहा गया था --'' कई नये कहानी लेखकों को 'कहानी' ने प्रकाश में लाया । साल भर में 'कहानी' के अपने हिन्दी लेखकों की एक पूरी पाँति ही तैयार हुई ।''[3] सन् 1955 के बाद इन नये लेखकों

3- 'कहानी' नववर्षांक, जनवरी 1955, पृ0 2

की कहानियों के साथ-साथ इनके कहानी सम्बन्धी वक्तव्यों तथा इनके विषय में लेखों, समीक्षाओं आदि का ऐसा सिलसिला चला जिसने शीघ्र ही एक आन्दोलन का रूप ले लिया । इस सिलसिले की सम्भवतः पहली कड़ी 'कल्पना' के जनवरी 1955 अंक में (जो काफी बाद में छपा दीखता है) दुष्यन्त कुमार का लेख 'नयी कहानी : परम्परा और प्रयोग' है । इस लेख में दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए लिखा है – ''जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय के बाद हिन्दी कहानी की विभिन्न दिशाओं में प्रयोग बिलकुल नयी उगती प्रतिभाओं द्वारा हो रहे हैं । बीच की पीढ़ी को छोड़कर एक दम नये लेखकों का उल्लेख कुछ पुरातन पंथियों को अखरेगा ही मगर यह सच्चाई है कि इन्होंने अपनी कहानियों में अधिक नयापन और अधिक सशक्त एवं मौलिक वस्तु तत्व दिया है, और दे रहे हैं । इस नयी टीम में मार्कण्डेय, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, राजेन्द्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, रामकुमार, वीरेन्द्र कृष्ण माथुर, केशव प्रसाद मिश्र, कमल जोशी, श्रीराम वर्मा, 'अमरकान्त' ओमप्रकाश, जितेन्द्र, वीरेन्द्र मेहदीरत्ता, विद्यासागर नौटियाल और धर्मवीर भारती के नाम ·· विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इनकी कहानियों में अधिकांशतः ऐसी वस्तुपरकता है जिसका सामूहिक रूप से हर उत्थान में अभाव पाया गया है ।''[4]

दुष्यन्त कुमार के लेख के शीर्षक में कहानी के साथ जुड़ा शब्द 'नयी' एक विशेषण मात्र है जिसका तात्पर्य उस समय के नवोदित कथाकारों की कहानियों से था । इसमें इस आन्दोलन के नामकरण का कोई आग्रह नहीं था । यदि ऐसा होता तो कहानी के जनवरी 56 के नववर्षांक में डा० नामवर सिंह यह नहीं लिखते – ''आज की कहानी पर विचार करते समय सब से पहले मेरे मन में यह सवाल उठता है कि 'नयी कविता' की तरह 'नयी कहानी' नाम की भी कोई चीज़ है

4- 'कल्पना' जनवरी 1955, पृ० 18

क्या ? और हम पाते हैं कि नयी कहानी नाम से कोई आन्दोलन अभी तक नहीं चला है ।''[5] लेख के आरंभ में यह प्रश्न उठाकर डा० नामवर सिंह ने तत्कालीन कथा प्रवृत्तियों की समीक्षा की है और लेख के अन्त में निष्कर्ष रूप में अपनी मान्यतायें व्यक्त की हैं – ''कुल मिलाकर आज की कहानियों को देखते हुए यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता की अपेक्षा कहानी में स्वस्थ सामाजिक शक्ति कहीं अधिक है और आज उपन्यास की तरह कहानी सामाजिक परिवर्तन के लिये जोरदार साहित्यिक शस्त्र का काम कर रही है ।''[6] इस निष्कर्ष से यह असंदिग्ध रूप से उपलक्षित होता है कि 'नयी कविता' की अपेक्षा 'नयी कहानी' नामकरण अधिक सार्थक और तर्कसंगत है । अत: छठे दशक की कहानी का 'नयी कहानी' नाम परोक्ष रूप से पहली बार डा० नामवर सिंह ने ही सुझाया है ।

'कहानी' पत्रिका का जनवरी 56 का विशेषांक जनवरी 55 के विशेषांक से कई दृष्टियों से अधिक महत्वपूर्ण है । इसमें नये कहानीकारों की चन्द ऐसी कहानियाँ छपीं जो बाद में नयी कहानी आन्दोलन की प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में काफी चर्चित हुईं । ये थीं अमरकान्त की 'हिप्टी कलक्टरी', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', भीष्म साहनी की 'चीफ़ की दावत' तथा मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेली' विशेषांक में कहानी सम्बन्धी चार लेख भी छपे —— श्रीपत राय का 'युद्धोत्तर हिन्दी कथा साहित्य', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का 'हिन्दी कथा साहित्य की समस्याएँ', प्रकाशचन्द्र गुप्त का 'समसामयिक कहानी : नयी पौध', तथा डा० नामवर सिंह का लेख 'आज की हिन्दी कहानी' । चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने एक वरिष्ठ साहित्यकार की मुद्रा धारण करके नये लोगों के द्वारा लिखी जा रही कहानी से असंतोष व्यक्त करते हुए उन्हें उपदेश दिए थे । इसके विपरीत शेष तीन लेखों में हिन्दी की नयी कथा प्रवृत्तियों को समझने और

5- 'कहानी' नववर्षांक, जनवरी, 1956, पृ० 18

6- वही, पृ० 20

उनका ईमानदारी से मूल्यांकन करने की कोशिश की गई थी । तीनों लेखों में ग्रामीण जन जीवन में हिन्दी के नये कहानीकारों की रुचि को सराहते हुए इसे एक स्वस्थ और वांछनीय कथा प्रवृत्ति के रूप में रेखांकित किया गया था । श्रीपत राय का मत था — '' आज की कहानी ने एक नया मोड़ भी लिया है जो सर्वथा नया न होते हुए भी नवीनता रखता है । यह स्वस्थ और आशाजनक प्रवृत्ति है तथा इसका समुचित स्वागत होना चाहिए । यह है हमारे देहातों में जाकर (जहाँ न कोई जाना, या जाकर बसना पसंद करता है) वहाँ के सच्चे, स्वाभाविक, निश्छल, चित्र उपस्थित करता ।''[7] श्रीपत राय ने मार्कण्डेय को इस प्रवृत्ति का सर्वश्रेष्ठ कथाकार माना है तथा अन्य लेखकों में आंकार नाथ श्रीवास्तव, केशवप्रसाद मिश्र, और शिव प्रसाद सिंह का नाम लिया है । 'कहानी' में तब तक फणीश्वर नाथ रेणु की कोई कहानी नहीं छपी थी । सम्भवतः इसीलिये 'कहानी' सम्पादक ने इस संदर्भ में उनका नामोल्लेख नहीं किया । इसी नयी प्रवृत्ति की ओर प्रकाश चन्द्र गुप्त ने इन शब्दों में संकेत किया था — '' नये कहानीकारों में जो विशेष गुण हमें सबसे महत्त्वपूर्ण लगता है, वह उनका गाँव की दिशा में एक बार फिर हिन्दी कहानी को ले जाना है । प्रेमचन्द से अगली पीढ़ी ने नगर के मध्यवर्ग की करुण कथा का अंकन अपनी कला में किया और इस प्रकार हिन्दी कहानी को नया पथ सुझाया था । नयी पीढ़ी गाँव के जीवन को निकट से जानती है और उसको विश्वास और आस्था से साहित्य में प्रतिष्ठित करती है । ऐसे कथाकारों में शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय का नाम उल्लेखनीय है ।''[8]

श्रीपत राय और प्रकाश चन्द्र गुप्त जहाँ ग्रामीण कहानियों की उस नवीन प्रवृत्ति की नवीनता से ही आकृष्ट हुए थे, वहाँ डा० नामवर सिंह ने इस प्रवृत्ति के ग्राह्य और वांछनीय होने के लिये पैनी सामाजिक दृष्टि की अनिवार्य शर्त लगा दी थी । अपने लेख में उन्होंने स्पष्ट कहा था — 'निःसंदेह इन

7- वही, पृ० 10

8- वही, पृ० 17

(विभिन्न अंचलों या जनपदों के लोक जीवन को लेकर लिखी गई) कहानियों में ताजगी है और प्रेमचन्द की गाँव पर लिखी कहानियों से एक हद तक नवीनता भी । लेकिन युवक कहानीकारों के हाथ पड़कर ये जनपदीय कहानियाँ कभी-कभी गहरा रूमानी रंग ले लेती हैं और देखा देखी लिखने वालों के अनसधे हाथों में फैशन का रूप धारण कर रही है । xxxx इन किशोर कहानीकारों के पास एक ही चीज़ की कमी है और वह है पैनी सामाजिक दृष्टि । लोक जीवन का मुग्ध चित्रण अपने आप में कोई बहुत ऊँची चीज़ नहीं है और न साध्य ही । इस सामग्री के आधार पर जागरूक पाठकों का मन ज्यादा देर तक बहलाया नहीं जा सकता । लोक जीवन के अन्तर्वैयक्तिक सामाजिक सम्बन्धों की समझ जैसे - जैसे बढ़ती जायगी, ये कहानीकार भी प्रौढ़ आंचलिक कहानियाँ दे सकेंगे । फणीश्वर नाथ रेणु , मार्कण्डेय, केशव मिश्र, शिव प्रसाद सिंह की कहानियों से इस दिशा में आशा बँधती दिखाई दे रही है ।''[9] डा० नामवर सिंह ने न केवल पहली बार सही सामाजिक दृष्टि से आंचलिक कहानियाँ लिखने वालों में रेणु का नाम लिया बल्कि इस प्रवृत्ति में उनके प्रमुख स्थान की ओर भी इंगित किया । यहाँ यह दिखाना अभीष्ट नहीं है कि आंचलिक कहानियाँ नयी कहानी की एक मात्र या सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है । यहाँ केवल इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना अपेक्षित है कि नयी कहानी आन्दोलन में ही पहली बार हिन्दी में कहानियों के विषय में इतनी व्यापक और गम्भीर चर्चा हुई । पहली बार 'मनोरंजन के लिये लिखी जाने वाली हल्की - फुल्की विधा' को गम्भीरता से लिया गया । इसका एक और उदाहरण यह है कि मार्कण्डेय के प्रथम कहानी संग्रह 'पान फूल' पर 'कल्पना' के दिसम्बर 54 अंक में धर्मवीर भारती, प्रकाशचन्द्र गुप्त और श्रीपत राय की तीन लम्बी समीक्षाएँ एक साथ छपी । नयी कहानी के संदर्भ में ही पहली बार कहानी लेखन के विषय में गम्भीर विचार-विनिमय तथा कथालोचन की एक सुव्यवस्थित प्रविधि

9- वही, पृ० 19-20

और प्रक्रिया निश्चित करने का प्रयास हुआ । इस दिशा में जहाँ डा० नामवर सिंह, डा० देवी शंकर अवस्थी, डा० धनंजय जैसे आलोचकों का योगदान महत्त्वपूर्ण है, वहाँ राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि नये कहानीकारों ने स्वयं अपने आलोचक बनकर कहानी के विषय में अपनी स्थापनाओं का प्रचार किया । छठे दशक के मध्य से ही नयी कहानी ने एक ठोस आधार भूमि प्राप्त कर ली थी और यह अब केवल कुछ पत्र - पत्रिकाओं का दामन पकड़ कर चलने वाला आन्दोलन मात्र नहीं रहा था । दशक के अन्त तक 'नयी कहानी' के बीसियों कथा-संग्रह और संकलन यथा 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' , 'अभिमन्यु की आत्महत्या', 'छोटे छोटे ताज महल', 'किनारे से किनारे तक', 'टूटना' , 'एक दुनिया समानान्तर' (राजेन्द्र यादव) ; 'नये बादल', 'फौलाद का आकाश' (मोहन राकेश) ; 'राजा निरबंसिया', 'खोयी हुई दिशाएं', 'मांस का दरिया' (कमलेश्वर) ; 'जिन्दगी और जोंक' (अमरकान्त); 'परिन्दे', 'पिछली गर्मियों में' (निर्मल वर्मा) ; 'ठुमरी' (फणीश्वर नाथ रेणु) ; 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' (उषा प्रियंवदा) ; 'पान फूल', 'महुए का पेड़', 'हंसा जाई अकेला' (मार्कण्डेय) ; भटकती राख (भीष्म साहनी) , 'कर्मनाश की हार' (शिव प्रसाद सिंह) इत्यादि छपकर साहित्य में मान्यता प्राप्त कर चुके थे ।

नयी कहानी और यथार्थवाद :

वस्तुतः नयी कहानी कोई विशेष प्रवृत्ति न होकर एक आन्दोलन है जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं । नयी कहानी के साथ ग्रामीण अंचलों की कहानियाँ लिखने वाले रेणु, मार्कण्डेय, शिव प्रसाद सिंह भी जुड़े हैं और लोकाल के रूप में लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क आदि को अपनाने वाले निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा और विजय चौहान जैसे लेखक भी । भारतीय कस्बों, नगरों और महानगरों की कहानियाँ लिखने वाले कमलेश्वर, अमरकान्त, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव तो इसके साथ हैं ही । जितनी विविधता नयी कहानी में कथ्य की दृष्टि से मिलती है

प्राय: उतनी ही शिल्प के रूप में भी दृष्टिगोचर होती है । जहाँ छोटे - छोटे अनुभव खंडों से बुना निर्मल वर्मा की कहानियों का टेक्सचर मिलता है वहीं अन-गढ़ता का आभास तथा 'मर्दाना लय' का एहसास देने वाली ज़नाना कहानीकार कृष्णा सोबती की शिल्प चेतना और भाषा भी मिलती है । और तो और नयी कहानी के पुरस्कर्ता कथाकारों और अधिवक्ता आलोचकों में अनेक मुद्दों पर गहरे मतभेद लक्षित होते है । डा० नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा के कहानी संग्रह 'परिन्दे' को 'नयी कहानी की पहली कृति' घोषित कर पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल दायरे को छोड़ने, एक छोटे से अनुभव से मानव नियति की व्यापक कहानी बुनने, जीवन के साथ सीधे साक्षात्कार, वास्तविकता के प्रति नये दृष्टिकोण, चरित्र वातावरण और कथानक के कलात्मक रचाव, भावावेग रहित तटस्थ चित्रण, सांकेतिकता, संगीतात्मकता आदि के लिये भूरि भूरि प्रशंसा की है ।[10] वहीं मोहन राकेश ने 'परिन्दे' संग्रह की कहानियों की एक ही मूड की आवृत्ति, एकरसता , भावुकता (जो वस्तु चयन से लेकर चरित्र-चित्रण, वातावरण चित्रण और भाषा के मुहावरे तक सभी में दिखाई देती है), व्यक्तियों के स्थान पर भावनाएं उभारने तथा यथार्थ के स्थान पर केवल कुछ संवेद ही प्रकट करने, चमत्कारिक कवित्व के बावजूद प्रभावहीनता के लिये निर्मल वर्मा की कड़ी आलोचना की है ।[11] प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रकार के वस्तु भेद, शिल्प भेद और मतभेद के होते हुए भी वह कौनसा तत्व है जो नयी कहानी से जुड़े सभी लेखकों को एक सूत्र में बाँधता है ? वह तत्व यथार्थ दृष्टि है जो कुछेक अपवादों को छोड़कर सभी नये कहानीकारों की रचनाओं के पीछे प्रेरक शक्ति के रूप में काम करती है । नयी कहानी मूलत: परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति की कहानी है जो नयी बदली हुई परिस्थितियों के आलोक में अपने परिवेश और अपने आपको समझना चाहता है ।

10- 'कहानी : नयी कहानी', पृ० 67-83

11- 'बकलम खुद', पृ० 41-42

नये कहानीकारों में अपने समकालीन नये कवियों की अपेक्षा सामाजिक चेतना अधिक है । एक तरह से नयी कहानी का उदय नयी कविता की समाज निरपेक्ष वैयक्तिकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ जिसके विषय में आगे चलकर चर्चा की जायेगी । नयी कहानी ने हिन्दी कहानी को एक बार फिर कथा साहित्य की महान यथार्थवादी परम्परा के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया । इस संदर्भ में नयी कहानी के विषय में इस आन्दोलन के पुरस्कर्ताओं और अधिवक्ताओं के मतों का परीक्षण अप्रासंगिक नहीं होगा ।

डा0 नामवर सिंह ने 'कहानी' मासिक के जुलाई 1956 के अंक में नयी कहानी की सोद्देश्यता को रेखांकित करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है — ''वस्तुतः आज का कहानीकार समाज में स्वयं इतना पीड़ित है कि वह अपने समानधर्मी लोगों के बीच अपनी पीड़ा बाँटने के लिये कुछ अपनी और कुछ उनकी कहने के लिये विवश है ।''[12] डा0 रामदरश मिश्र ने यथार्थवाद के साथ नयी कहानी का सम्बन्ध इन शब्दों में स्थापित किया है — ''नयी कहानी की चेतना .. स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है और यह चेतना कलाकारों के अनुभव से जुड़ी होने के कारण अनेक रूप और रंग धारण करती है । अर्थात् नयी कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति के मन की चेतना है ।''[13] नयी कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर मोहन राकेश कहानीकार के लिये लूकाच की तरह ही यथार्थवाद अर्थात् ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से व्यक्ति का उसके परिवेश के भीतर चित्रण अनिवार्य मानते हुए लिखते हैं — '' यथार्थ —— इतिहास का और समय का —— वह सब है जिसे कि भोगा जाता है और वे सब जो कि उसे भोगते हैं। जीवन के अलग-अलग संदर्भ और उनमें जीने वाला व्यक्ति दोनों एक ही चेहरे के अलग-अलग हिस्से हैं । इसलिये व्यक्ति को उसके संदर्भों से अलग करके नहीं देखा

12- 'कहानी : नयी कहानी', पृ0 65

13- 'हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान', पृ0 57

जा सकता ।''[14] राजेन्द्र यादव ने यद्यपि नयी कहानी का स्वरूप स्पष्ट करने की कोशिश में ''वैयक्तिक सामाजिकता'' तथा ''सामाजिक वैयक्तिकता'' आदि पहेलियाँ बुझाई हैं और योगियों की मुद्रा धारण करके यह कहा है कि '' नयी कहानी का विरोध न मार्क्सवाद से है, न अस्तित्ववाद से ; आधुनिक संक्रमण को न उसे पूँजीवादी संकट कहने में झिझक है न ' ऐलियनेशन ' का टोटल हारर कहने से गुरेज़ है ।''[15] फिर भी उनकी मान्यता है कि ''नयी कहानी का व्यक्ति, जैनेन्द्र - अज्ञेय से अधिक सामाजिक, सक्रिय, तटस्थ और प्रवृत्तिवादी कहानियों से अधिक अपने व्यक्तित्व वाला मनुष्य है । (प्रवृत्तिवादी कथाकृतियों की आलोचना एंगेल्स ने भी की है – लेखक) xxx जितना वह अपने प्रति ईमानदार है उतना ही परिवेश के प्रति सजग, बदलते संदर्भों के प्रति सचेत और अपने अनुभवों को बड़े अनुभवों से जोड़ने को सक्रिय ।''[16] कमलेश्वर ने नयी कहानी आन्दोलन का मूल्यांकन देश विभाजन के परिप्रेक्ष्य में करते हुए उसका मुख्य स्वर धर्मान्धतावाद, भाग्यवाद, ईश्वरवाद आदि के रूप में व्यक्त होने वाले सामन्ती संस्कारों के प्रति अवज्ञा और विद्रोह माना है ।[17]

'भोगा हुआ यथार्थ' और अनुभव की प्रामाणिकता के प्रति नये कहानीकारों का विशेष आग्रह है । वास्तव में ये दोनों बातें एक हैं । नयी कहानी के पुरस्कर्ताओं की मान्यता है कि यथार्थ दृष्टि वही है जिसे अपने प्रामाणिक अनुभव के आधार पर, भुक्तभोगी बनकर प्राप्त किया जाय । इस बात को कुछ लोगों ने ''वैयक्तिक सामाजिकता और सामाजिक वैयक्तिकता'' अथवा ''आत्मपरक वस्तुपरकता और वस्तुपरक आत्मपरकता'' आदि पहेलियों के रूप में रखा है । वास्तव में नये कहानीकार जहाँ यह मानते हैं कि व्यक्तिको उसके सामाजिक संदर्भ से अलग

14- 'बकलम खुद', पृ0 111

15- 'कहानी : स्वरूप और संवेदना', पृ0 49

16- वही, पृ0 56

17- 'नयी कहानी की भूमिका', पृ0 162

नहीं किया जा सकता है वहाँ इस बात पर भी बल देते है कि व्यक्ति की उपेक्षा करके किसी अमूर्त सामाजिकता की बात करना निरर्थक है । स्पष्ट है कि ऐसी स्थापनाएँ नयी कहानी का यथार्थवाद, सामाजिकता या प्रगतिशीलता से विरोध प्रकट नहीं करती है । यह केवल उस रूढ़धर्मी वैचारिकता की अस्वीकृति थी जो रूस में स्टालिन ज़्दानोव के युग में दृष्टिगोचर होती है और जिसे भारत के कुछ प्रगतिवादी कठमुल्लाओं ने अपना शस्त्र बनाया था । नयी कहानी को कथा-साहित्य की यथार्थवादी और प्रगतिशील परम्परा से विरोध के रूप में नहीं, उसके विकास के रूप में ही आँका जा सकता है । यही कारण है कि जहाँ नयी कविता में प्रयोगशीलता, अमूर्तता, अर्थहीनता आदि की ओर विशेष झुकाव लक्षित होता है वहाँ नयी कहानी ने परम्परागत शिल्प, सम्प्रेषणीयता और सार्थकता को बिल्कुल रद्द नहीं किया । यथार्थवाद यदि रचना-दृष्टि के स्तर पर तथ्यों को सही ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने की अनिवार्यता स्वीकार करता है तो शिल्प के स्तर पर कथानक, पात्र, वातावरण, टेक्चर के विश्वसनीय, बोधगम्य, तथा कलात्मक रचाव की भी माँग करता है । इसीलिये यथार्थवादी कथाकारों ने अपनी सारी शक्ति कहानी का रूप बदलने में व्यय नहीं की है । डा० नामवर सिंह ने उचित ही कहा है कि कहानीकार रूप कहानीपन को अक्षुण्ण रख के ही बदला जा सकता है । इस संदर्भ में उन्होंने नयी कहानी से कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' का उदाहरण दिया है जिसमें एक लोक कथा की पृष्ठ भूमि में एक निम्न-मध्य-वर्गीय परिवार की कहानी कही गई है । '' दो भिन्न युगों के दो निरबंसियों की जीवन कथा दो रेखाओं की तरह एक दूसरे को छूती और काटती हुई चलती चली जाती है । कहानी में लोक कथा का यह प्रयोग शिल्प सम्बन्धी नवीनता कही जा सकती है । लेकिन यह कोरा शिल्प नहीं है, न उससे कहानी के कहानीपन में बाधा पड़ती है । इसके विपरीत यह लोक कथा मुख्य कथा को और भी मार्मिकता प्रदान करती है । x x x शिल्प के लिये लाई गई अतीत की यह कथा वर्तमान वास्तविकता को उभारने के साथ ही अतीत का अर्थ भी हमारे लिये बदल देती है और अन्त में दो कथाओं की विषमता दो युगों की

विषमता की गहरी खाई पर ही रोशनी नहीं डालती, बल्कि वर्तमान वास्तविकता पर मीठा व्यंग भी करती है कि इतना विकास करने के बाद भी आज का निम्न मध्यवर्गीय युवक है कि अपनी पत्नी को स्वीकार नहीं कर सकता, जब शताब्दियों पहले एक राजा ने सारी लोक मर्यादा तोड़कर अपनी रानी को अपना लिया ।..[18]

कमलेश्वर की इस कहानी में तब भी शिल्प सम्बन्धी नवीनता है । मगर नयी कहानी के अन्तर्गत ऐसी कहानियों की संख्या कम नहीं है जिनके शिल्प में कोई 'नवीनता' न होते हुए भी उनमें विद्यमान गहरी यथार्थ दृष्टि उनकी प्रासंगिकता को रेखांकित करती है । अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टरी', 'दुर्घटना', 'जिन्दगी और जोंक' ऐसी ही कहानियां है । 'डिप्टी कलक्टरी' में नारायण और उसके पिता शकलदीप बाबू की पीढ़ा दो व्यक्तियों और उनके परिवार का अतिक्रमण करके आज के युग में एक पूरे वर्ग की त्रासदी के रूप में मूर्त हो जाती है । ऐसी कहानियां वास्तव में जीवन के टुकड़े में निहित अन्तर्विरोध अथवा संकट को पकड़ने की कोशिशें हैं जो बृहत अन्तर्विरोध के किसी न किसी पक्ष का आभास देती है । भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' भी एक ऐसी ही कहानी है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की जटिलतावश मानव सम्बन्धों में भी जटिलता आ गई और परम्परागत नैतिक मूल्यों के आगे प्रश्न चिह्न लग गये । यह जटिलता नारी और पुरुष के सम्बन्धों में विशेषरूप से लक्षित होने लगी । अतः नयी कहानी में नारी पुरुष के सम्बन्ध के पुराने पैटर्न को छोड़कर नये नैतिक बोध की यथार्थता की अभिव्यक्ति भी मिलती है । उदाहरण स्वरूप राजेन्द्र यादव की 'एक कमज़ोर लड़की की कहानी', मन्नू भंडारी की 'यही सच है', निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' आदि कहानियों का उल्लेख हो सकता है । दुर्भाग्य से कुछ नये कहानीकारों ने और सभी पक्षों की उपेक्षा करके स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की नयी नैतिकता को ही नयी वास्तविकता माना और इस बात की शिकायत की कि

18- डा० नामवर सिंह -'कहानी : नयी कहानी', पृ० 29

प्रेमचन्द ने कोई प्रेम कहानी क्यों नहीं लिखी है ? इस सम्बन्ध में कुछ अन्य कहानी-कारों ने पाश्चात्य परिवेश को इतना अधिक चित्रित किया कि ऐसा लगा जैसे कि पाश्चात्य परिवेश और दृष्टिकोण ही आज का यथार्थ है । ये दोनों प्रवृत्तियाँ नयी कहानी आन्दोलन के लिये घातक प्रमाणित हुई ।

नयी कहानी का नयापन कथ्य के चयन या लेखक की यथार्थवादी दृष्टि और भावबोध तक ही सीमित नहीं । यह कहानी के शिल्प और बिम्ब-विधान में भी दिखाई देता है । प्रामाणिक अनुभवों को अधिकाधिक ईमानदारी से व्यक्त करने के प्रयत्न में ही नये कहानीकारों ने चुस्त - दुरुस्त कहानियाँ न रचकर ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जिनकी संरचना अनगढ़ता और विशृंखलता का आभास देती है । किसी फारमूला को कथा का रूप देकर यथार्थ का 'निर्माण' नहीं, अपितु कथा-स्थिति के भीतर ही यथार्थ की खोज की गई । यही कारण है कि नयी कहानियों का प्रभाव तीर की तरह न चुभकर अगरुबोध की तरह सारे व्यक्तित्व को आच्छादित करता है ।[19] नयी कहानी का बिम्ब विधान आरोपित न होकर कथ्य का ही अविच्छिन्न भाग है और शिल्प के स्तर पर कहानीकार के यथार्थबोध को रेखांकित करता है । इस संदर्भ में डा० नामवर सिंह ने कुछ कहानियों का बहुत ही कुशलता से विश्लेषण किया है ।[20]

19- राजेन्द्र यादव, 'कहानी : स्वरूप और संवेदना,' पृ० 8

20- ''शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार', शिवप्रसाद सिंह की 'दीनू के साथ एक सुबह' , राजेन्द्र यादव की 'नया मकान और प्रश्नवाचक पेड़', मोहन राकेश की 'आर्द्रा' तथा निर्मल वर्मा की 'तीसरा गवाह' कहानी में बिम्ब विधान तथा वातावरण के सार्थक प्रयोग को देखा जा सकता है । कहीं कोसी नदी की सूखी धार घटवार के अकेलेपन का बिम्ब है, तो कठ-फोड़वा की किट-किट तथा पनचक्की की मथानी की छिच्छिट-छिच्छिट सूने हृदय की निरर्थक धड़कन का तादमय चित्र है । कहीं आम की गुठली सी जिन्दगी की किसी कठिन गाँठ का प्रतीक बन जाती है, तो कहीं नया मकान एक मध्यवित्त

नयी कविता और नयी कहानी एक ही वैचारिकता और भावबोध के दो अलग-अलग विधाओं के संदर्भ में अलग-अलग रूप नहीं है । वास्तव में वैचारिकता और कला चेतना की दृष्टि से ये दोनों परस्पर विरोधी साहित्यांदोलन है । नयी कविता का आन्दोलन अपने पूर्ववर्ती प्रयोगवाद के रूप में सन् 1943 में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रगतिशील विचारधारा के प्रति विद्रोह के रूप में आया । मुक्तिबोध, केदार नाथ सिंह, शमशेर बहादुर सिंह की स्वस्थ सामाजिक दृष्टि के बावजूद नयी कविता के मूल में अधिकतर 'नदी के द्वीप' का व्यक्तिवादी दर्शन तथा कुण्ठा और अनास्था का स्वर ही मिलता है । नयी कहानी के आन्दोलन का आरंभ ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कविता के मूल्यों के प्रति विद्रोह का स्वर लेकर हुआ । मोहन राकेश के शब्दों में ''नयी कहानी का विकास नयी कविता की पार्श्ववर्ती शाखा के रूप में नहीं, उससे अलग और उससे आगे के साहित्यिक आन्दोलन के रूप में हुआ और उसका मूल स्वर कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति का नहीं, मनुष्य के यथार्थ को उसकी सामाजिक परिस्थितियों के परिपार्श्व में परखने आंकने का है । इस तरह नयी कहानी की संचेतना नयी कविता की आगे की पीढ़ी के उस विद्रोह'' की अभिव्यक्ति है जिसकी बुनियादें समाजपरक विचारधारा में है ।''[2]

व्यक्ति के उत्थान (?) की साकार प्रतिमा है, जिसके सामने प्रश्न वाचक चिह्न की तरह एक पेड़ खड़ा है । कहीं छः बच्चों वाली मादा सुअर की घुप-घुप की आवाज तथा उसके ऊपर चमकते हुए नक्षत्र का सांकेतिक चित्र है, तो कहीं कोर्ट का अंधेरा कमरा ही वर्तमान कानून का प्रतीक बन जाता है, स्पष्ट ही ये बिम्ब नये है और अपने प्रतीकार्थ के बावजूद आकर्षक है । इस दृष्टि से नयी कहानियाँ बहुत समृद्ध है ।''

– डा० नामवर सिंह, 'कहानी : नयी कहानी', पृ० 43-44

2-'बकलम खुद', पृ० 8।

नयी कहानी और रेणु :

सन् 1954 में 'मैला आँचल' उपन्यास के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य गगन में फणीश्वर नाथ रेणु का उदय एक धूमकेतु की तरह हुआ । रेणु ने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ सन् 1940 के आस-पास कविताओं से किया था और वे कविताएँ पूर्णिया नगर से उस समय निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती थीं ।[22] परन्तु सन् 1942-43 में अपने साहित्यिक गुरु बंगला के सतीनाथ भादुड़ी के सुझाने पर रेणु कविता छोड़कर कहानियाँ लिखने लगे । कहा जाता है कि 'बट बाबा' नाम से रेणु की पहली कहानी सन् 1945 में मासिक 'विश्वमित्र' कलकत्ता में छपी थी । 'विश्वमित्र' में ही अगले वर्ष उनकी दो और कहानियाँ छपीं, 'रसूल मिसतिरी' (फरवरी 46 अंक) तथा 'बीमारों की दुनियाँ में' (दिसम्बर 46 अंक) उनकी इन कहानियों में तेजी से बदलते यथार्थ को तदनुकूल भाषा और शिल्प के माध्यम से अभिव्यक्ति करने की आतुरता मिलती है । परन्तु इसके बावजूद भी वे काफी समय तक, मैला आँचल के प्रकाशन के कुछ समय बाद तक भी, हिन्दी के नये कथा-आन्दोलन से कटे रहे । इधर सन् 1950 के आस-पास नयी कहानी के अन्तर्गत ग्राम कथाओं की प्रवृत्ति भी शुरु हुई और इस प्रवृत्ति के कथाकारों में मार्कण्डेय, कमल जोशी, शिवप्रसाद सिंह आदि को ही गिना जाने लगा । यही कारण है कि प्रकाश चन्द्र गुप्त, श्रीपत राय आदि ने सन् 1955-56 में लिखे लेखों में ग्राम कथा को नयी कहानी की प्रमुख प्रवृत्ति मानते हुए भी रेणु का कहीं कोई जिक्र नहीं किया । 'कहानी' पत्रिका में पहलीबार 1957 के नववर्ष विशेषांक में रेणु की कहानी 'लाल पान की बेगम' छपी और वे नये कहानीकारों की बिरादरी में शामिल हो गये । रेणु का पहला कहानी-संग्रह 'ठुमरी' सन् 1959 में छपा । इस दृष्टि से भी रेणु का रचना-काल नयी कहानी आन्दोलन का तुल्यकालिक है ।

22- नागार्जुन, 'फणीश्वर नाथ रेणु' ('रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि', सम्पादक प्रो० रामबुझावन सिंह, डा० रामवचन राय, नवनीता प्रकाशन पटना -3, मार्च 1978), पृ० 17.

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ग्राम कथा या आंचलिक कहानी नयी कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति है और यह बात निर्विवाद है कि रेणु इस प्रवृत्ति के सर्वश्रेष्ठ कथाकार है। रेणु ने कुछ अन्य आंचलिक कथाकारों की तरह अछूते अंचलों और जीवन क्षेत्रों का चयन पाठकों को चमत्कृत करने के लिये नहीं किया है। और फिर रेणु का कथा-आंचल उस दृष्टि से अछूता भी नहीं है। रेणु की कथा-भूमि बिहार के पूर्णिया जिले के गाँव ही नहीं, आधुनिक भारतीय इतिहास का वह काल-खंड है जहाँ सामन्तवाद के प्रतीक गाँव में पूंजीवाद का प्रतीक नगर घुस रहा है। जहाँ 'विद्यापत नाच' को 'सिलमा का नागिन वाल डानस' स्थानापन्न कर रहा है, धान और पाट के खेतों में लोक गीत की कोई कड़ी गुनगुनाने वाली लड़कियों की आवाज़ मिलके भोंपू के नीचे दब जाती है, गाँव के 'लौजवान' सारी मोह माया तोड़कर 'सहर' रिक्शा गाड़ी की 'डिलेवरी' करने के लिये 'फुर्र' हो जाते है; 'महुआ घटवारिन' को 'सौदागर' खरीद लेता है। रेणु ने अपनी कहानियों में जो स्थितियाँ और समस्याएँ उभारी है वे किसी एक गाँव, किसी एक जिले, किसी एक प्रदेश की सीमाओं का अतिक्रमण करती हैं... हाँ, जिले, ग्राम, जनपद, जाति, टोले आदि का नामोल्लेख स्थिति और समस्या को एक प्रामाणिक संदर्भ देता है। संदर्भ की प्रामाणिकता ही एक निश्चित कथा-स्थिति को एक सामान्य कथा-स्थिति की अपेक्षा अधिक प्रतिरूपात्मक और परिणामतः अधिक प्रभावपूर्ण बनाती है। जिस 'अनुभव की प्रामाणिकता' और 'भोगे हुए यथार्थ' को नये कहानीकारों ने नारों के रूप में अपनाया, उसका उज्ज्वलतम रूप रेणु में ही मिलता है। रेणु ने अपने पात्रों का उनके सम्पूर्ण ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में चित्रण किया है। इसीलिये उनके कथामंच पर यदि कोई पात्र केवल एक क्षण के लिये भी प्रवेश करता है तो अपनी समस्त सामाजिक पृष्ठभूमि को लेकर करता है।

कुछ लोगों को नयी कहानी के पुरस्कर्त्ताओं में रेणु का नाम लेने पर आपत्ति हो सकती है। शायद इसलिये कि उन्होंने अपनी कहानियों की सफाई

में न लम्बे-लम्बे लेख लिखे हैं और न ही कहानी के बारे में अपनी स्थापनाओं का जोर शोर से प्रचार किया है । इसके बावजूद नयी कहानी के कदाचित सबसे अधिक वाचाल नेता कमलेश्वर ने रेणु की महानता को इन शब्दों में स्वीकारा है — '' - - - बीसवीं सदी का यह संजय - रूप, गंध, स्वर, नाद, आकार और बिम्बों के माध्यम से 'महाभारत' की सब वास्तविकता, सत्य, घृणा, हिंसा, प्रमाद, मानवीयता, आक्रोश और दुर्घटनाएँ बयान करता जा रहा है । उसके ऊँचे माथे पर महर्षि वेद व्यास का आशीष अंकित है ।''[23]

रेणु की कहानियाँ हिन्दी की यथार्थवादी कथा परम्परा की एक शक्तिशाली कड़ी है । कुछेक अन्तर्विरोधों के बावजूद रेणु का कथा साहित्य जनवादी साहित्य का उत्कृष्टतम उदाहरण है । जब छठे दशक के कतिपय कहानीकार तथा सातवें दशक के अधिकांश कथाकार कुछ भ्रमवश, कुछ फैशनवश महानगर के संत्रास, व्यक्ति के अकेलेपन, जीवन की अर्थहीनता की कहानियाँ लिखकर वायुमण्डल को दूषित कर रहे थे, रेणु की कहानियाँ स्वच्छ वायु के झोंकों की तरह जनमन को राहत दे रही थीं । फणीश्वर नाथ रेणु की स्वस्थ सामाजिक दृष्टि ही, भारत में ही नहीं, रूस तथा अन्य समाजवादी देशों में भी उनकी लोकप्रियता का कारण है ।[24]

●

23- कमलेश्वर, 'मेरा हमदम मेरा दोस्त : फणीश्वर नाथ रेणु', 'नई कहानियाँ' (मार्च 1964), पृ० 66.

24- 'नया प्रतीक' मासिक के मार्च, 1978 अंक में 'रेणु की याद में' नाम से डा० कुमार विमल का लेख छपा है जिसमें उन्होंने लिखा है —''इस में रेणु का कथा साहित्य प्रेमचन्द और यशपाल के कथा साहित्य के बाद ऊँचा स्थान रखता है । ××× लेनिन ग्राड में तोलस्तोया नाम की एक महिला लेखिका, जो अब मुख्यतः अनुवाद का काम कर रही है, मुझसे मिली तो उन्होंने रेणु के लेखन के बारे में जिज्ञासा की । इसी तरह की बात प्राग में हुई जब वहाँ की विदुषी डा० अग्यार अन्सारी ने रेणु के साहित्य की दिलचस्प चर्चा मुझसे की ।''

अध्याय-1

रेणु का कथा-जगत

कहानियों का विवरण :

सन् 1954 में 'मैला आँचल' के प्रकाशन के साथ ही फणीश्वरनाथ रेणु एक उपन्यासकार के रूप में अवतरित हुए और इस पहली कृति से ही उन्हें जैसी ख्याति प्राप्त हुई वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभूतपूर्व है। उनकी दूसरी प्रकाशित पुस्तक 'परती : परिकथा' भी एक औपन्यासिक कृति ही थी जिससे उनकी ख्याति में वृद्धि हुई। परन्तु रेणु ये दो उपन्यास लिखने से पूर्व बहुत सी कहानियाँ लिख चुके थे यद्यपि 'ठुमरी' नाम से उनका पहला कहानी-संग्रह सन् 1959 में 'मैला आँचल' और 'परती : परिकथा' के काफी बाद छपा। स्वयं रेणु के अनुसार उनकी पहली कहानी 'बट बाबा' थी जो सन् 1945 में 'विश्वमित्र' मासिक कलकत्ता में छपी थी।[1] अगले वर्ष इसी पत्रिका में उनकी दो और कहानियाँ छपीं – 'रसूल मिसतिरी'[2] तथा 'बीमारों की दुनियाँ में'[3]। 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद उनकी कहानियाँ इलाहाबाद आदि हिन्दी केन्द्रों से निकलने वाली पत्रिकाओं में भी छपने लगीं और वे उपन्यासकार के साथ-साथ कहानीकार के रूप में भी चर्चित होने लगे।

1- फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा दिया गया मदन मोहन उपेन्द्र के प्रश्न का उत्तर। (देखिए, मदन मोहन उपेन्द्र का लेख 'परती के परिकथाकार रेणु', प्रो० राम बुझावन सिंह तथा डा० रामवचन राय द्वारा सम्पादित 'रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि' नवनीता प्रकाशन, पटना-3, 1978 में संकलित, पृ० 81)

2- 'विश्वमित्र' मासिक, कलकत्ता, फरवरी 1946, पृ० 44-46

3- वही, दिसम्बर, 1946, पृ० 25-28

DISS
O,152,3,N21:9
15219
TH-266
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY

'ठुमरी' रेणु का पहला कहानी-संग्रह है जिसे सन् 1959 में राजकमल प्रकाशन ने छापा । इसमें कुल नौ कहानियाँ हैं -- 'रसप्रिया', तीर्थोदक', 'ठेस', 'नित्य-लीला', 'पंच लाइट', 'सिर पंचमी का सगुन', 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम', 'लाल पान की बेगम' तथा 'तीन बिंदियाँ' । आठ वर्ष बाद सन् 1967 में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से रेणु का दूसरा कहानी-संग्रह 'आदिम रात्रि की महक' छपा । इस संग्रह में कुल चौदह कहानियाँ हैं --'विघटन के क्षण', 'तबे एकला चलो रे', 'एक आदिम रात्रि की महक', 'जलवा', 'पुरानी कहानी : नया पाठ', 'अतिथि-सत्कार', 'काक चरित', 'आजाद परिन्दे', 'जड़ाऊ मुखड़ा', 'उच्चाटन', 'ना जाने के हि वेष में', 'प्रजा-सत्ता', 'आत्म-साक्षी' तथा 'नैना जो गिन' । 'अगिन खोर' रेणु का तीसरा कथा-संग्रह है जो सन् 1974 में संभावना प्रकाशन, हापुड़ से छपा । 'अगिन खोर' में कुल ग्यारह कहानियाँ संगृहीत हैं -- 'अगिन खोर', 'रेखाएँ : वृत्तचक्र', 'भित्ति चित्र की मयूरी', 'लक्ड़ा', 'शीर्षक हीन', 'एक अकहानी का सुपात्र', 'जेव', 'मन के रंग', 'दस गज्जा के इस पार और उस पार', 'अल्ल और भेस' तथा 'अग्नि-संचारक' ।

इन तीन कथा-संग्रहों के अतिरिक्त रेणु की कहानियों के कुछ अन्य संग्रह भी मिलते हैं । इनमें सबसे पहला स्वयं फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा सम्पादित 'हाथ का जस' नामक कथा-संग्रह है जिसमें रेणु के अतिरिक्त दो अन्य कथाकारों, हिमांशु श्रीवास्तव और रणधीर सिनहा की कहानियाँ संकलित हैं । इसे सन् 1962 में बिहार ग्रंथ-कुटीर पटना ने प्रकाशित किया है । 'ठुमरी' के बाद छपे इस संग्रह में, 'ठुमरी' में संगृहीत 'लाल पान की बेगम' के अतिरिक्त दो अन्य कहानियाँ -- 'कस्बे की लड़की' तथा 'हाथ का जस और वाक का सत्त' भी मिलती हैं । राजेन्द्र यादव द्वारा सम्पादित 'नये कहानीकार' पुस्तक-माला के अन्तर्गत राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली ने सन् 1965 में 'फणीश्वरनाथ रेणु : श्रेष्ठ कहानियाँ' नाम से रेणु की कहानियों का संग्रह छपा । इसमें 'ठुमरी' में संकलित चार कहानियों के अतिरिक्त दो और कहानियाँ मिलती हैं -- 'टेबुल' तथा 'अच्छे आदमी' । राजपाल एण्ड सन्ज

ने ही सन् 1974 में 'मेरी प्रिय कहानियाँ' नाम से रेणु की नौ कहानियों का एक और संग्रह छपा । इन नौ कहानियों में से आठ रेणु के इससे पूर्व प्रकाशित संग्रहों से ली गयी है — 'ठुमरी' से तीन, 'आदिम रात्रि की महक' से तीन तथा 'अगिन खोर' से दो । इसके अतिरिक्त इसमें 'संवदिया' नामक कहानी भी है जो रेणु के किसी अन्य संकलन में नहीं मिलती है । इन कहानियों के अतिरिक्त फणीश्वरनाथ रेणु की कुछ ऐसी कहानियाँ भी हैं जो पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्य-संकलनों में प्रकाशित होने के बावजूद उनके उपरोक्त संग्रहों में नहीं मिलतीं । 'सारिका' के जुलाई 1971 के अंक में छपी ''तब शुभनामे.... ''नई कहानियाँ में छपी 'विकट-संकट' तथा अन्यत्र छपी 'स्टिल लाइफ' ऐसी ही कहानियाँ हैं । पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर कहानियों के नाम पर रेणु के विभिन्न उपन्यासों के अंश भी छपे हैं । 'परती : परिकथा' का आरम्भिक अंश 'एक लक्ष्य के नोट्स' के नाम से बहुत पहले एक साहित्य संकलन में छपा था । इसी प्रकार 'नई कहानियाँ' के दिसम्बर, 1963 के अंक में 'जुलूस' उपन्यास का आरम्भिक अंश .. 'रोमांस शून्य प्रेम कथा की एक भूमिका' शीर्षक से छपा था । इन उपन्यास अंशों को यदि छोड़ दें, तो विभिन्न कथा-संग्रहों में संकलित तथा पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी रेणु की कहानियों की संख्या पचास के आस-पास होगी ।

कहानियों का वर्गीकरण :

फणीश्वर नाथ रेणु को 'आँचलिक' कथाकार माना जाता है और यह कहा जाता है कि उनका कथांचल उत्तरी बिहार का पूर्णिया जिला है तथा यहीं के लोक-जीवन को लेकर उन्होंने उपन्यासों और कहानियों की रचना की है । यह भी कहा जाता है कि प्रेमचन्द के बाद रेणु ही दूसरे महत्वपूर्ण लेखक हैं जिन्होंने ग्रामीण जन-जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया जिस कारण उनका कथा-साहित्य ग्राम कथाओं के अन्तर्गत आता है । परन्तु यह बात एक सीमा तक ही सत्य है ।

रेणु ने जिस रचनात्मक दबाव से 'रस प्रिया', 'पंच लाइट', 'लाल पान की बेगम', 'तीसरी कसम अर्थात मारे गए गुलफाम' आदि ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, उस रचनात्मक दबाव से 'टेबुल', 'जलवा', 'आजाद परिन्दे', 'अगिन खोर', 'लफड़ा', 'शीर्षकहीन' आदि कहानियाँ भी रची हैं जिनका कथ्य पटना जैसे नगरों या बम्बई जैसे महानगरों के जीवन से सम्बन्धित है। रेणु की कुछ कहानियों में देहाती और शहरी जीवन का अजीब सा सम्मिश्रण भी मिलता है। कहीं उनके पात्र गाँव में रहकर ही नगर के स्वप्न देखते हैं, या फिर नगर में आकर नगर वासियों के परिहास के पात्र बनते हैं ('विघटन के क्षण', 'उच्चाटन', 'कस्बे की लड़की' 'एक अकहानी का सुपात्र') तो कहीं शहरी पात्रों की नगरोचित बुद्धि और तत्परता का ग्रामीण वास्तविकता के साथ सामंजस्य न स्थापित होने पर हास्यास्पद स्थितियाँ पैदा होती हैं ('नैना जोगिन', 'अक्ल और भैंस')। मोटे तौर पर रेणु की कहानियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है — ग्राम कथाएँ तथा ग्रामेतर कथाएँ। ग्राम कथाओं के अन्तर्गत 'रस प्रिया', 'तीर्थोदक', 'ठेस', 'नित्य लीला', 'पंच लाइट', 'सिर पंचमी का सगुन', 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम', 'लाल पान की बेगम', 'हाथ का जस और बाक का सत्त', 'विघटन के क्षण', 'तबे एकला चलो रे', 'एक आदिम रात्रि की महक', 'उच्चाटन', 'आत्म साथी', 'नैना जोगिन', 'भित्ति चित्र की मयूरी', 'अक्ल और भैंस', तथा कुछ अन्य कहानियाँ आती हैं। ग्रामेतर कथाओं के उदाहरण स्वरूप 'तीन बिंदियाँ', 'कस्बे की लड़की', 'टेबुल', 'जलवा', 'बाक चरित', 'आजाद परिन्दे', 'जड़ाऊ मुखड़ा', 'ना जाने केहि वेष में', 'प्रजा सत्ता', 'अगिन खोर', 'रेखाएँ: वृत्तचक्र', 'लफड़ा', 'शीर्षकहीन', 'एक अकहानी का सुपात्र', 'जैव', 'मन के रंग', 'अग्निसंचारक', 'स्टिल लाइफ', 'बीमारों की दुनियाँ में' आदि का उल्लेख हो सकता है। रेणु की कुछ कहानियों में निःसंदेह ग्रामीण जीवन और संस्कृति के प्रति मोह मिलता है। पर उनकी अधिकांश कहानियों

में आम आदमी के छोटे छोटे सुख - दुःख एक निराली आत्मीयता और रागात्मकता से चित्रित किए गये हैं । ऐसी कहानियों का परिवेश देहात का भी है और शहर का भी । परिवेश की भिन्नता से इन कहानियों की प्रभावोत्पादिकता में कोई अन्तर नहीं आया है । इनके अतिरिक्त रेणु की कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें राजनीतिक कहानियाँ कहा जा सकता है । अतः रेणु की कहानियों को निम्नलिखित चार वर्गों में बाँटा जा सकता है —

1- ग्राम संस्कृति के प्रति मोह की कहानियाँ ;
2- आम आदमी के सुख-दुःख की कहानियाँ ;
3- राजनीतिक कहानियाँ ;
4- फुटकल कहानियाँ ।

ग्राम संस्कृति के प्रति मोह :

रेणु की कहानियों में भारतीय इतिहास के उस काल खंड की कथा कही गयी है जब मरणशील सामन्तवाद उभरते पूँजीवाद के चपेटों के आगे अपने को असमर्थ पाता है । गाँवों का टूटना इसी ऐतिहासिक परिवर्तन का लक्षण है । रेणु की अनेक कहानियों में गाँवों के टूटने की यह प्रक्रिया अपनी अपरिहार्यता के बावजूद पाठक के मन को एक हलकी सी व्यथा से भर देती है । रेणु की दृष्टि में शहर औद्योगीकरण और पूँजीवाद का ही प्रतीक नहीं, उस खोखली, कृत्रिम और आधारहीन जीवन पद्धति का भी प्रतिनिधित्व करते हैं जो हमारी जनपदों के लोक जीवन की सहजता और कलात्मकता, को भी धीरे-धीरे लील रही है । सम्भवतः इसीलिये 'रसप्रिया', 'विघटन के क्षण', 'उच्चाटन', 'ठेस', तथा 'पितिचित्र की मयूरी' आदि कहानियों में रेणु का ग्राम संस्कृति के प्रति मोह मूर्तिमान हो उठा है । 'विघटन के क्षण' और 'उच्चाटन' में जहाँ देहाती युवकों का शहर की चकाचौंध से आकृष्ट होकर गाँव से भागने की दुखद स्थिति का चित्रण है वहाँ 'रस प्रिया', 'ठेस' और 'पितिचित्र की मयूरी' कहानियों में गाँव की माटी में रची - बसी लोक कलाओं के ह्रास की अवांछनीय और लोक कलाकारों के उपेक्षित जीवन की करुण स्थिति पाठकों के सामने उभरती है ।

आम आदमी का सुख-दु:ख :

रेणु की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति उन के पात्र है और इन पात्रों की शक्ति उनकी विलक्षणता नहीं, सामान्यता है । रेणु के पात्र आम आदमी, मामूली व्यक्ति और छोटे लोग हैं जिनके छोटे-छोटे सुख-दुखों से ही लेखक की अधिकांश कहानियों का ताना बाना बुना गया है । ये लोग देहाती भी हैं और शहरी भी । रेणु के पात्र जीवन की अनेकानेक सुखद और दुखद परिस्थितियों से गुजरते है जो मामूली और छोटी - छोटी है, यद्यपि इन परिस्थितियों के बीज व्यापक ऐतिहासिक , सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में मौजूद हैं । लेखक की अधिकांश कहानियाँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं और इनका परिवेश गाँव भी है और शहर भी । ग्रामीण परिवेश की इस वर्ग की कहानियों में 'तीर्थोदक', 'नित्य लाला', 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम' , 'पंच लाइट', 'सिर पंचमी का सगुन', 'लाल पान की बेगम', 'एक आदिम रात्रि की महक', 'उच्चाटन' , 'नैना जोगिन', 'संवदिया' आदि का उल्लेख हो सकता है । 'काक चरित', 'आजाद परिन्दे' , 'जहाऊ मुखड़ा', 'प्रजा सत्ता' आदि शहरी परिवेश की कहानियाँ भी वास्तव में छोटे लोगों के छोटे-छोटे सुख-दु:खों की ही कहानियाँ हैं । 'पंच लाइट' में गाँव के महतो टोली के पंच जैसे तैसे रुपये इकट्ठे करके एक पंचलाइट अर्थात् पेट्रोमैक्स खरीद लेते हैं । यह बात सारी टोली के लिये अभूतपूर्व उत्साहवर्द्धक और सुखद घटना है । किन्तु इस कटु यथार्थ से दो- चार होने पर कि जात-बिरादरी में कोई भी आदमी पेट्रोमैक्स जलाना नहीं जानता, उनका सारा उत्साह दुख में बदल जाता है । 'लाल पान की बेगम' अर्थात् बिरजू की माँ बैल गाड़ी पर सवार होकर नाँच देखने के लिये तैयार बैठी है । लेकिन जब बिरजू का बाप काफी देर तक भी गाड़ी लेकर नहीं आता है तो उसका सारा चाव ठंडा पड़ जाता है । गाँव की मुँहजोर बहु, जंगी की पुतोहू की बोली जले पर नमक का काम करती है और बिरजू की माँ को लगता है कि सारी दुनिया

उसकी शत्रु है । लेकिन अन्त में जब बिरजू का पिता गाड़ी लेकर आता है तो उसके मन का सारा मैल अपने आप धुल जाता है । वह खुद जैगी की पुतोहू को मना लेती है और बैल गाड़ी पर बिठाकर अपने साथ नाच देखने के लिये ले जाती है । 'काक चरित' में किसनलाल को अपनी परेशानियों के कारण बिजली के खम्भे पर बैठे 'कायं कायं' करने वाले कौए को देखकर लगता है कि यह मनहूस पक्षी एक तो सुबह - सुबह 'अशुभ भाखने' लगा और दूसरे मकरी बार में लगे पतले तार को खींच कर 'सैबटाज' कर रहा है । परन्तु कुछ समय बाद जब डाक्टिया कोई खुशखबरी लेकर आता है तो किसनलाल न केवल कौए के आगे मछली का टुकड़ा डालता है बल्कि उसे एक पुराना गीत 'सोने से चोंच मढ़ा दूंगा कागा' भी याद आता है । 'जहाज मुखड़ा' के बटुक बाबू इसलिये मानसिक अशान्ति भोग रहे हैं कि उनकी पुत्री बुला के चेहरे पर मस्सा है जिसमें एक रोयां उग आया है और जिस कारण उसका विवाह नहीं हो सकेगा । आखिर यह निश्चित किया जाता है कि मस्से को आपरेशन करके चेहरे से हटा दिया जायगा । आपरेशन के लिये सारी तैयारी की जाती है पर ऐन मौके पर सर्जन . . स्पैशलिस्ट डाक्टर उमेश मस्सा काटने से इनकार कर देता है । उसने बुला के मस्से पर ही रीझकर उससे विवाह करने का निश्चय किया है ।[4]

इस वर्ग की कहानियों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें अकेलेपन

4- यहाँ उल्लेखित कहानियों का, उनके कुछ मोटे कथा-सूत्रों की ओर ही संकेत करके, एक प्रकार से सरलीकरण किया गया है । वास्तव में इनकी कथात्मक संरचना और संवेदना काफी जटिल और संश्लिष्ट है जिसकी विशद् चर्चा आगे की जायगी ।

का बोझ ढोने वाले व्यक्तियों की जीवन में जम जाने की लालसा, या कम से कम कहीं से कोई कोमलता और सहृदयता पाने की आदिम प्यास मुखर हो उठी है। 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम', 'एक आदिम रात्रि की महक', 'रसवे की लड़की' ऐसी ही कहानियाँ हैं।

राजनीतिक कहानियाँ :

फणीश्वरनाथ रेणु लेखन की ओर प्रवृत्त होने से पूर्व एक राजनीतिक कार्यकर्ता थे। उनकी राजनीतिक सक्रियता स्वदेश तक ही सीमित नहीं रही, पड़ोसी देश नेपाल के राजनीतिक आन्दोलनों से भी उनका गहरा लगाव रहा। सन् 1952 में लम्बी बीमारी के उपरान्त तथा लतिका जी के साथ विवाह होने के बाद जब उन्होंने राजनीति को तिलांजलि देकर साहित्य को स्थायी रूप से अपनाया तब भी वे केवल सक्रिय राजनीति से अलग हुए। जैसा कि मधुकर सिंह को दिये इन्टरव्यू में रेणु ने स्वीकारा है, राजनीति तो सदा उनके लिये 'दाल भात की तरह' रही।[5] सक्रिय राजनीति से अलग होने का उनका संकल्प भी क्षीण सिद्ध हुआ जब सन् 1972 में उन्होंने बिहार विधान सभा की सदस्यता के लिये चुनाव लड़ा या जब वे सन् 1974 में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे बिहार आन्दोलन में शामिल हो गये। राजनीति उनके अनुभव क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अंग थी। अतः स्वाभाविक है कि उन्होंने राजनीतिक विषयों को लेकर भी कहानियाँ लिखीं। इन कहानियों में जहाँ सामाजिक न्याय प्राप्त करने के हेतु राजनीतिक क्रान्ति के लिये झटपटाहट का स्वर मिलता है, वहाँ दलगत राजनीति अथवा राजनीति में निहित स्वार्थों के फलस्वरूप उत्पन्न मोहभंग की स्थिति भी उभर कर सामने आती है। 'लेबे एकला चलो रे', 'पुरानी कहानी : नया पाठ', 'आत्म साक्षी', 'जलवा', 'बीमारों की दुनियाँ' में ऐसी ही कहानियाँ हैं।

5- सारिका, मार्च, 1971, पृ0 83

फुटकल कहानियाँ :

रेणु की बहुत सी कहानियाँ ऐसी है जिन्हें आंशिक रूप में उपरोक्त तीनों प्रकार की कहानियों के तत्व मिलने के बावजूद, इन तीनों में से किसी भी वर्ग में नहीं रखा जा सकता । कुछ कहानियाँ ऐसी है जिनमें रेणु के साहित्य और कला संबंधी विचार और मान्यताएँ कथा का रूप धारण करती हैं । जैसे, 'तीन बिंदियाँ', 'अगिन खोर' तथा 'अग्नि संचारक' । 'रेखाएँ : वृत्त चक्र', 'दसगज्जा के इस पार और उस पार' जैसी कहानियाँ आत्मकथात्मक, या यों कहें आत्मविश्लेषणात्मक हैं । इनमें लेखक के आकांक्षा - निराश, आस्था - अनास्था, जिजीविषा — मृत्युकामना, सदाशयता - अपराधबोध आदि के संश्लिष्ट भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है । जहाँ रेणु ने इस प्रकार की गम्भीर कहानियों की रचना की है वहाँ कुछ हलकी - फुलकी कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें किन्हीं पात्रों का 'कैरिकेचर' प्रस्तुत किया गया है और जिनका प्रभाव रेडियो से प्रसारित होने वाली हलकी फुलकी रोचक वार्ताओं से मिलता है । उदाहरणस्वरूप 'ना जाने केहि वेष में', 'अतिथि सत्कार', 'अक्ल और भैंस' जैसी कहानियों का उल्लेख हो सकता है ।

रेणु का परिवेश :

फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के पूर्णिया जिले के एक गाँव में हुआ था । उनके निजी जीवन का क्षेत्र भी मुख्यतया बिहार प्रदेश का यह उत्तर-पूर्वी भाग ही रहा । देश का यही भू-भाग मुख्य रूप से उनकी कहानियों और उपन्यासों का कथा-क्षेत्र या 'लोकाल' है जिसे उन्होंने विलक्षण संवेदनशीलता के साथ प्रतिबिम्बित और प्रतिस्थापित किया है । पूर्णिया जिला पहले भागलपुर डिविजन के अन्तर्गत था पर अब इसके साथ कटिहार और सहरसा को मिलाकर कोसी डिविजन नाम से अलग मंडल बनाया गया है । इस जिले की

सीमाएँ उत्तर में नेपाल तथा पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले से; पूर्व में पश्चिम बंगाल के दीनाजपुर और मालदा जिलों से ; दक्षिण में भागलपुर, संथाल परगना तथा पश्चिम बंगाल के मालदा जिले से तथा पश्चिम में सहरसा से मिलती है"।

रेणु का गाँव औराही हिंगना इसी जिले में उत्तर-पूर्व - सीमांत - रेलमार्ग पर सिमराहा स्टेशन के पास फारबिस गंज से दस किलोमीटर दक्षिण आम के बागों और हरे भरे खेतों के मध्य आबाद है । रेणु ने अनेक कहानियों में इस गाँव का चित्रण किया होगा परन्तु, जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक की जानकारी है, औराही हिंगना का नामोल्लेख किसी कहानी में नहीं मिलता है । हाँ, पूर्णिया जिले के अन्य प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध गाँवों, कस्बों और शहरों का ज़िक्र उनकी कहानियों में बार-बार मिलता है । वास्तव में कोसी तथा पनार , बकरा, लोरन्द्रा और महानदी आदि उसकी शाखा नदियों का सारा इलाका ही रेणु का कथा-क्षेत्र है ।[6] उनकी अनेक कहानियों की घटनाएँ भारत - नेपाल सीमा के आर-पार स्थित गाँवों और कस्बों यथा विराट नगर, जोगबनी, फारबिस गंज, अररिया कोर्ट आदि में घटती है ।[7] कटिहार और खासकर कटिहार रेलवे जंक्शन के प्रति रेणु का विशेष मोह लक्षित होता है । ' एक आदिम रात्रि की महक ' का घटनास्थल कटिहार स्टेशन के आस-पास बसे गाँव ही हैं । 'तीर्थोदक' में कटिहार से बनारस तथा 'ना जाने केहि वेष में' में कटिहार से बरौनी तक की रेल यात्रा का वर्णन है । रेणु की एक असंकलित कहानी 'तबशुभ नामे - - - - ' का वक्ता यह कहकर मानो उनके मन की ही बात कर रहा है कि ''गाँव समाज से नेह - छोह तोड़े दो दशक हो गये । अब कभी अपने गाँव की याद नहीं

6- 'पुरानी कहानी : नया पाठ'

7- 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम', 'अच्छे आदमी ' , 'दसगजा के इस पार और उस पार'

आती । x x x जिस गाँव में मेरा जन्म हुआ, उसका नाम भी चेष्ठा करके भूल गया हूँ । किन्तु इस कटिहार जंक्शन रेलवे-स्टेशन के मोह को अब भी काट नहीं सका हूँ ।''[8]

बिहार सोशलिष्ट पार्टी की सक्रिय सदस्यता के कारण रेणु को बिहार के इस उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में जगह-जगह घूमने और वहाँ के जन-जीवन तथा लोगों की समस्याओं को समझने का अवसर मिला । इस संबंध में मधुकर सिंह के साथ बातचीत करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था — ''किसान - मजदूरों में काम करने से मुझे कम फायदे नहीं हुए — बल्कि सच पूछिए तो राजनीति ने मुझे बहुत दिया । अपने जिले के गाँव - गाँव घूमा, लोगों से मिला, उनके सुख - दुःख से परिचित हुआ, चन्दे वसूले । अपनी सक्रियता के कारण साथियों के साथ गाँवों में रात के वक्त भी डेरा डालना पड़ता - - - - रात में दूर से कभी ढोलक - झाँझ पर नाच गान की स्वर लहरी मँडराती आती और मैं अपने साथियों को सोते छोड़ वहाँ चल देता । कभी 'विदेशिया' , कहीं 'जालिम सिंह सिपहिया' और किसी गाँव में 'ननदी भउजिया' के नाच-गान । मैं नाच देखने के ज्यादा नाच देखने वालों को देखकर अचरज से मुग्ध हो जाता । x x x जहाँ तक बोली और भाषा का प्रश्न है, इन्हीं गाँवों में घूमकर भाषा की शक्ति को समझने का मौका मिला । मैं यह मानता हूँ कि वे लोग ही - गाँव के किसान-मजदूर ही मुझसे लिखवाते थे, ठीक उसी प्रकार जैसे भूख लगने पर आदमी 'रुकान' और तनाव दोनों महसूस करता है ।''[9]

सन् 1952 में लम्बी बीमारी के बाद स्वस्थ होकर तथा लतिका जी के साथ विवाह करने के बाद रेणु मुख्यरूप से पटना में ही रहने लगे । यद्यपि वे बीच-बीच में अपने गाँव अवश्य जाते थे फिर भी गाँव के साथ उनका एक प्रकार

8- सारिका, जुलाई 1971, पृ0 40

9- सारिका, मार्च 1971, पृ0 87

से नाता टूट गया । सम्भवतः यही कारण है कि उनके पहले कहानी - संग्रह 'ठुमरी' में जहाँ नौ में से आठ कहानियाँ ग्रामीण परिवेश की हैं, वहाँ दूसरे संग्रह 'आदिम रात्रि की महक' की चौदह कहानियों में से केवल आठ का परिवेश ग्रामीण है । तीसरे और अन्तिम कथा-संग्रह 'अग्निखोर' की ग्यारह कहानियों में से मात्र तीन ऐसी हैं जिन्हें ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ कहा जा सकता है । पटना में स्थायी रूप से रहने के बाद रेणु ने 'जलवा', 'जड़ाऊ मुखड़ा', 'रेखाएँ : वृत्तचक्र', 'जेब', 'टेबुल' आदि कहानियों में 'लोकाल' के रूप में पटना को चुना है । 'कस्बे' की लड़की' कहानी हजारी बाग नगर में घटती है । 'तीसरी कसम' की शूटिंग के सिलसिले में जब उन्हें कई बार बम्बई आना-जाना पड़ा तो उन्होंने 'लफड़ा' नाम से इस महानगर के जीवन के एक पक्ष को लेकर भी कहानी लिखी । फिर भी यह बात असंदिग्ध है कि रेणु की ग्राम-कथाओं की संख्या उनके द्वारा लिखी ग्रामेतर कहानियों से दुगनी है । इन्हीं ग्राम कथाओं में ही उनकी प्रतिभा भी अपने उत्कृष्टतम रूप में प्रकट हुई है ।

रेणु की ग्राम कथाओं के विषय में दो बातें विचारणीय हैं । पहली बात यह है कि रेणु के ग्राम आधुनिक सभ्यता से अछूते, अपरिचित, अनचीन्हे विशिष्ट, जीवन-क्षेत्र या 'अँचल' नहीं हैं, जैसी कि कतिपय 'विद्वानों' की स्थापना है । बिहार का पूर्णिया जिला लद्दाख या अण्डमान द्वीप की तरह देश का कोई अलग थलग और इस कारण अत्यधिक पिछड़ा क्षेत्र नहीं है । और फिर, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, रेणु की कथा भूमि पूर्णिया जिले के गाँव ही नहीं, आधुनिक भारतीय इतिहास का वह काल-खंड है जहाँ सामन्तवाद के प्रतीक गाँव में पूँजीवाद का प्रतीक नगर घुस रहा है । आधुनिक हिन्दी कहानी के संदर्भ में देहात में घुसने वाले जिस नगर बोध की चर्चा डा० इन्द्रनाथ मदान ने की है, रेणु की कहानियों का परिवेश वही है ।[10] इस विषय में रेणु ने अपने विचार स्वयं इन शब्दों में प्रकट किए हैं – ''अब तो कितने ही गाँवों में नगरोचित सुविधाएँ प्राप्त हैं –

10- डा० इन्द्रनाथ मदान, 'आधुनिकता और हिन्दी साहित्य', पृ० 74

मसलन, सड़कें, बिजली, सुलभ-शिक्षा, पुस्तकालय, स्पोर्ट्स आदि । यदि ऐसे गाँवों को गाँव मानें तो गाँवों की कोटियाँ निर्धारित करनी होंगी । यदि इन्हें शहर मानें तो निश्चय ही भारत में गाँवों की संख्या कुछ कम हो गयी है ।...[11]

दूसरी बात यह है कि रेणु ने प्रेमचन्द की तरह ही भारतीय गाँवों की समस्त सुन्दरता और कुरूपता को सरलता और सहजता से चित्रित करने के साथ - साथ ग्रामीण जीवन के उस पक्ष को भी पकड़ लिया है जिसे प्रेमचन्द अपनी व्यापक दृष्टि के बावजूद छोड़ गये थे । वह पक्ष है ग्राम जीवन का संगीत, उसकी लय और थिरकन । यह बात उनकी कहानियों में अधिक मार्मिकता और कहीं-कहीं अत्यधिक भावुकता का भी समावेश करती है ।

पात्र :

रेणु का कथा-जगत् भाँति-भाँति के पात्रों से आबाद और इस कारण भरा पूरा है । प्रेमचन्द को छोड़कर शायद ही हिन्दी के किसी अन्य कथाकार की रचनाओं में इस प्रकार नाना वर्गों, वर्णों और वृत्तियों के पात्रों के दर्शन होते हों । रेणु की कहानियाँ किन्हीं व्यक्तियों की नहीं, समष्टि की कहानियाँ हैं । रेणु की कहानियों में पात्रों की संख्या प्रायः आधे दर्जन से कम नहीं होती और उनमें यदि उन व्यक्तियों को भी शामिल किया जाय जिनकी कहानी में चर्चा होती है तो यह संख्या दर्जनों तक पहुँचती है । रेणु के पात्रों में गाँव के छोटे किसान, एलवाहे, कहार, लोहार,[12] गाड़ीवान,[13] महतो टोली जैसी छोटी जात के लोग[14] भी हैं और गाँव तथा शहर के सम्पन्न और सुखी लोगों के परिवार भी हैं ।[15] इनमें शहर के आकर्षण में गाँव छोड़कर शहर भागने वाले युवक भी[16] शामिल हैं तथा

11- सुवास कुमार के साथ रेणु की बातचीत, 'पणीश्वरनाथ रेणु और उनका परिदृश्य' ('रेणु: संस्मरण और श्रद्धांजलि' में संकलित, पृ० 105)

12- सिरपंचमी का सगुन

13- तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम

14- पंचलाइट

15- तीर्थोदक, ठेस, कस्बे की लड़की, जैव

16- विघटन के क्षण, उच्चाटन

रेलवे की नौकरी के कारण शहर छोड़ कर देहाती स्टेशनों में काम करने वाले रेलवे के छोटे अफसर, पेटमैन, पानी पाण्डे,[17] मिस्त्री, और मजदूर[18] भी शामिल हैं। लेखक की कहानियों में जोगी-सन्यासियों,[19] पंडित-पुरोहितों[20] के साथ-साथ अपराधियों, बदमाशों और लठैतों[21] के भी दर्शन होते हैं। डाक्टरों और नर्सों[22] की ही नहीं, देहाती वैदों और पन्सारियों[23] की भी झलक मिलती है। राजनीतिक लोगों में मन्त्री, एम०एल०ए०, राजनीतिक कार्यकर्ता[24] एक ही पार्टी के दो विरोधी गुटों के परस्पर लड़ने वाले कामरेड, तथा मोहभंग से ग्रस्त छोटे कार्यकर्ता[25] सभी नजर आते हैं।

रेणु के पात्रों में कलाकारों या कला संस्कृति से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध व्यक्तियों की संख्या भी काफी है। इनमें गीताली, भीताली संगीतज्ञ बहिनें, सरोदवादक अकराम, गिटारिस्ट राधेश्याम, कलाकार मनहरराय[26] जैसे अभिजात और प्रतिष्ठित कलाकार भी हैं तथा पंचकौड़ी मिरदंगिया,[27] सिरचन,[28] फुलपत्तिया और उसकी माँ[29] जैसे गाँव की छोटी जाति के लोक कलाकार और शिल्पी भी हैं। गाँव के मेले की नौटंकी में नाचने वाली हीरा बाई[30] भी है और बम्बई की फिल्म इंडस्ट्री के लोग भी हैं।[31] 'निराश' जी जैसे पुरानी पीढ़ी के कवि[32] भी हैं और आग उगलने वाले नयी पीढ़ी के विद्रोही कलाकार[33]

17- एक आदिम रात्रि की महक

18- सिरपंचमी का सगुन

19- विघटन के क्षण, एक आदिम रात्रि की महक

20- तीर्थोदक

21- लाल पान की बेगम (जंगी और उसका बेटा रंगी)

22- रेखाएं : वृत्तचक्र

23- हाथ का जस बाक का सत्त

24- पुरानी कहानी : नया पाठ

25- आत्म-साक्षी

26- तीन बिंदियाँ

27- रस प्रिया

28- ठेस   29- भित्तिचित्र की मयूरी

30- तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम

31- लफड़ा   32- ना जाने केहि वेश में...

33- अग्निखोर

भी है । और इन सब के साथ ही लक्ष्मी बाबू जैसे 'कल्चर जीवी' प्राणी [34] तथा भैरव प्रसाद 'भैरा' जैसे परजीवी साहित्य प्रेमी [35] भी मिलते हैं ।

इन पात्रों के अतिरिक्त रेणु की कहानियों में एक सुन्दर, सुकुमार, सुशीला, ममतामयी और त्यागमयी नारी के बार-बार दर्शन होते हैं जो शरत् की नारी की प्रतिमूर्ति है । 'तीर्थोदक' कहानी में यह काशी के पण्डे की, बिना माँ की बेटी अन्नपूर्णा का रूप धर कर आती है जो सभी यात्रियों और जजमानों को जले कटे की दवा और हाजमा गोली के साथ - साथ अपनी मीठी बोली और प्यार भी बाँटती है । 'ठेस' कहानी में यह भानू बनकर उपस्थित होती है जिसके लिये स्वाभिमानी शिल्पी सिरचन सारा मान-अपमान भूलकर रातों-रात शीतल पाटी, चिक और कुश की एक जोड़ी आसनी बुनकर तैयार करता है । यही ममतामयी नारी 'विघटन के क्षण' कहानी में विजया दी के रूप में अवतरित होकर विघटन की सर्वव्यापी आँधी में आस्था की दीपशिखा के रूप में अविचलित जलती रहती है । 'जलवा' की पत्नियां भी इसी नारी का प्रतिरूप है । यह नारी, जो सन् 1934 में गाँधी जी की प्रार्थना - सभाओं में कुरानशरीफ की आयतों का सस्वर पाठ करती थी, सन् 1943 के आन्दोलन में विभिन्न शहरों की गलियों में आज़ाद दस्ता के क्रान्तिकारी कार्यक्रमों को लेकर अलख जगाती थी, सन् 1947 में हिन्दू - मुस्लिम दंगों के समय उपद्रवियों से जूझते समय जिसके मुखपर आभा छायी रहती थी, उस दुःख से अपने मुखमंडल को बुरके से ढक लेने पर मजबूर हो गयी है कि "अव्वाम की कसमें खाने वाले टुकर टुकर देखते रहे और फिरकापरस्त अजदहों ने पूरी कौम को लील लिया ।" 'संवदिया' की बड़ी बहू के रूप में यह ममतामयी त्यागमयी नारी फिर प्रकट होती है जिसका संवाद न पहुँचाकर हरगोबिन अपना धर्म केवल यह सोचकर बिगाड़ता है कि यदि गाँव की लक्ष्मी गाँव छोड़कर चली जायगी तो बाकी क्या रह जायगा ? इसी कोटि की नारियों के अन्तर्गत 'तीसरी कसम अर्थात्

34- अतिथि - सत्कार

35- ना जाने किस वेष में.....

मारे गए गुलफाम' की हीराबाई भी आ सकती है जो सीधे सादे हीरामन गाड़ीवान पर अपना सब कुछ निछावर करना चाहकर भी कुछ न कर पाने के लिये विवश है क्योंकि 'महुआ घटवारिन' को सौदागर ने खरीद लिया है।'' 'टेबुल' कहानी की मिस दुर्बादास के चरित्र में भी कुछ ऐसा है जिससे कि वह अपनी आत्मकेन्द्रीयता और हठधर्मिता के बावजूद पाठक के मन में अपने लिये ममता और करुणा उपजाती है।

दूसरी ओर रेणु ने कुछ ऐसे नारी पात्रों की भी सृष्टि की है जिनके गुण और स्वभाव इन ममतामयी त्यागमयी नारियों के बिल्कुल प्रतिकूल है।' अच्छे आदमी' कहानी की प्रदीपकुमार का माध्य यदि निःसंकोच ठेकेदार, ड्राइवर, दारोगा, लाला मिस्त्री सभी के साथ संबंध स्थापित कर लेती है तो 'नैना जोगिन' की इतनी की''एक-एक गाली नंगी, अश्लील तस्वीर बनाती है - - - ब्लू फिल्म के दृश्यों की तरह।'' परन्तु लेखक ने इन्हें भी अपनी सहानुभूति और संवेदना दी है। वास्तव में रेणु ने एक अथाह संवेदना और लगाव से पात्रों की अच्छाइयों के साथ - साथ . . उनकी बुराइयों को भी चित्रित किया है। आदमी तो आदमी, उन्होंने 'तबे एकला चलो रे' में किसन महाराज नाम के पाड़े को भी उज्वल रंगों में अंकित किया है। हाँ, समाज का एक वर्ग अवश्य ऐसा है जिसके लिये रेणु के मन में कोई सहानुभूति या ममता नहीं है। यह वर्ग महाजन वर्ग है। रेणु की कहानियों में जहाँ कहीं महाजन, बनिया, सौदागर, सेठ, साहूकार पात्र बनकर आते है, वे स्वार्थी, कंजूस, अन्यायी और दुष्ट व्यक्तियों के रूप में ही चित्रित हुए है। 'लाल पान की बेगम' की मखनी फुआ के मन में कंजूस सहुआइन के बारे में यह धारणा है – ''और एक वह है सहुआइन। राम कहो। उस रात को अफीम की गोली की तरह एक मटर भर तम्बाकू रखकर चली गयी गुलाब बाग मेले और कह गयी कि डिब्बी भर तम्बाकू है। 'ठेस' में स्वाभिमानी ग्राम शिल्पी सिरचन महाजन टोले के भज्जू महाजन की बेटी के बनियापन को लक्ष्य करके तिलमिलाने वाली बात कहता है – '' बड़ी बात ही है बिटिया। बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दो -दो

पटेर की पाटियों का काम सिर्फ खेसारी का सत्तू खिलाकर कोई करवाए भला ? यह तुम्हारी माँ ही कर सकती है बबुनी । '' तीर्थोदक में सास और सहुआइन के मध्य रुपये पैसे को लेकर चलने वाली 'ठण्डी लड़ाई' से रेलगाड़ी में बैठे अन्य तीर्थ-यात्रियों का ही नहीं, कहानी पढ़ने वाले पाठकों का मन भी खराब हो जाता है । 'प्रजासत्ता' कहानी में रामविलास नामक मुंगेर के एक बड़े साहूकार का बेटा जिसके पास बीड़ी कम्पनी और गल्ले की आढ़त है, पैसे केबल पर ही अपनी साली विमला के साथ बलात्कार करता है और उसकी सास उल्टे अपनी बेटी विमला को ही डाँटती है ।

रेणु और 'आंचलिकता' :

फणीश्वरनाथ रेणु के साथ चिपका 'आंचलिक' लेवल उनके सही मूल्यांकन में बाधा बन गया है । दुर्भाग्य से हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के एक वर्ग के मन में ऐसी धारणा बन गयी है कि रेणु एक 'आंचलिक' लेखक है और 'आंचलिक' लेखक शुद्ध लेखक से अलग कोटि का जीव होता है । हिन्दी में 'आंचलिक' उपन्यासों की अलग विधा न सही, उपन्यासों के अन्तर्गत एक वर्ग तो माना गया है । अन्य भारतीय भाषाओं में भी इस तरह के उपन्यास मिलते हैं । बंगला में माणिक बन्धोपाध्याय का पद्मा नदी के माझियों को लेकर लिखा गया उपन्यास 'पद्मानदीर माझी' तथा ताराशंकर बन्धोपाध्याय का 'भगिनी कन्धार काहिनी', मराठी में पेंडसे का 'गारवीचा बापू' और माडगूलकर का 'बनगर बाड़ी' तथा मलयालम में केरल के मछेरों के जीवन को लेकर लिखा गया तकषी शिवशंकर पिल्ले का 'चेम्मीन' आदि ऐसे ही उपन्यास हैं । क्या इन भाषाओं में इन उपन्यासों का अलग आंचलिक वर्ग माना गया है ? वास्तव में प्रत्येक यथार्थवादी लेखक किसी न किसी क्षेत्र से जुड़ा होता है । फिर हिन्दी में ही 'आंचलिक उपन्यास' या 'आंचलिक कहानी' नाम से अलग विधा, प्रवृत्ति या वर्ग के लिये आग्रह क्यों ?

अंग्रेजी साहित्य में अवश्य 'रीजनल नावेल' नाम से एक प्रवृत्ति को स्वीकार किया गया है । यदि हिन्दी के तथाकथित आंचलिक उपन्यास इस प्रवृत्ति के सीधे प्रभाव के परिणामस्वरूप रचे गये होते तो फिर उनके लिये प्रादेशिक या क्षेत्रीय विशेषण का प्रयोग होना चाहिए था, क्यों कि हिन्दी में 'रीजन' का स्वीकृत पर्याय प्रदेश या क्षेत्र है । हिन्दी में ऐसे उपन्यासों के 'आंचलिक' उपन्यास नामकरण के पीछे एक संयोग, या दुर्घटना है । यह दुर्घटना कैसे घटी, इसकी चर्चा करने से पूर्व यह जानना उपयोगी होगा कि अंग्रेजी में 'रीजनल नावेल' को कैसे परिभाषित किया गया है । वास्तव में 'रीजनल'उपन्यासों और ऐसे उपन्यासों में, जिनमें स्थानीय रंग पाया जाता है, बहुत कम अन्तर है । हैरी शा द्वारा सम्पादित 'ए डिक्शनरी आफ लिटरेरी टर्म्स' में किसी विशेष भू-भाग या क्षेत्र के साहित्य में प्रतिनिधित्व, या लेखन में किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के निष्ठा पूर्वक वर्णन, वहाँ की बोली, रीति रिवाजों, लोक वार्ता, विश्वासों, वेश-भूषा और इतिहास के ठीक-ठीक और सही चित्रण को रीजनलिज्म माना गया है ।[36] पुस्तक में यह स्वीकार किया गया है कि ये तत्त्व कमोवेश सभी कथाकृतियों में पाये जाते हैं । अतः यह पारिभाषिक शब्द प्रायः उन्हीं रचनाओं के लिये प्रयुक्त होता है जिनमें किसी भौगोलिक क्षेत्र का यथार्थ चित्रण ही अपने में इष्ट हो ।[37] दूसरी

36-"Regionalism: (1) Representation in literature of a particular section or area, (2) fidelity in writing to a specific geographical region, accurately representing its speech, manners, customs, folklore, beliefs, dress and history."

- Harry Shaw, 'Dictionary of Literary Terms' (Mc-Graw Hill Book Company) Page 319

37- "Regionalism is an element in nearly all literature, since most selections involve a locale or setting; the term, however, is usually applied to writings in which locale is thought of as a subject interesting in itself"(Ibid).

और उक्त 'डिक्शनरी' के अनुसार लेखन में किसी विशेष क्षेत्र के वैचित्र्य, वेशभूषा बोली तथा रीति-रिवाजों को उभारने के प्रयत्न को स्थानीय रंग (लोकल कलर) की संज्ञा दी गयी है ।[38] जे० ए० गुडाने द्वारा सम्पादित 'ए डिक्शनरी आफ लिटरेरी टर्म्स' के अनुसार क्षेत्रीय लेखक वह है जो किसी विशिष्ट क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित करके उस क्षेत्र और वहाँ के निवासियों को अपने कथा-साहित्य का आधार बनाता है ।[39] इसी कोश के अनुसार कथा में रोचकता और प्रामाणिकता बढ़ाने के हेतु किसी क्षेत्र या परिवेश का विवरण जिसके अन्तर्गत वहाँ का परिदृश्य, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, संगीत आदि आते हैं, स्थानीय रंग कहलाता है ।[40] 'दि आक्सफोर्ड कम्पेनियन टु अमेरीकन लिटरेचर' में क्षेत्रीयता (रीजनलिज्म) तथा स्थानीय रंग (लोकल कलर) के मध्य अन्तर स्पष्ट करने का अच्छा प्रयत्न किया गया है । इस पुस्तक के अनुसार साहित्य में विशेष भौगोलिक क्षेत्र के चित्रण पर बल देते हुए, पात्रों के जीवन को गति देने वाले क्षेत्रीय इतिहास और लोक रीति पर संकेन्द्रण ही क्षेत्रीयता है । यह स्थानीय रंग से इस रूप में भिन्न है कि इसमें बोली, व्यवहार और वेश-भूषा के वैचित्र्य या अनोखेपन की अपेक्षा मूलभूत दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय विभेद पर ध्यान केन्द्रित करते हुए लेखक एक प्रकार से सांस्कृतिक नृविज्ञानी का कार्य करता है ।[41]

38- "Local Color : A term applied to writing which develops and promotes the mannerisms, dress speech and customs of a particular region"
- Ibid , Page 224.

39-J.A. Guddon ,"A Dictionary ~~Tar~~ of Literary Terms" (Andre Deutsch, London,1977) Page 550.

40-Ibid, Page 362

41-"Regionalism-term applied to literature which emphasizes special geographical setting and concentrates upon the history , manners and folkways of the area as these help to shape lives or behaviour of the characters. It generally differs from 'local color' in that it lays less stress upon quaint oddities of dialect mannerism and costume and more on basic philosophical or sociological distinctions which the writer often views as though he were a cultural anthropologist". - The Oxford Companion to American Literature (4th Ed.1965) Page 487

ऊपर दी गयी परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य में किसी क्षेत्रीयता या 'आंचलिकता' की अपेक्षा स्थानीय रंग ही अधिक मिलता है । रेणु ने अपनी रचनाओं में उत्तर-पूर्वी बिहार के ग्रामीण परिदृश्य का चयन किसी सांस्कृतिक नृवैज्ञानिक अध्ययन के लिये नहीं, अपनी कथाओं को प्रामाणिक संदर्भ देने और उनकी रोचकता बढ़ाने के लिये ही किया है । रहा प्रश्न रेणु द्वारा प्रयुक्त भाषा का । हैरी शा की मान्यता है कि क्षेत्रीय लेखक अपने क्षेत्र की भाषा बोली को ठीक- ठीक और सही रूप में प्रस्तुत करता है । परन्तु रेणु ने ऐसा भी नहीं किया है । वे ऐसा कर भी नहीं सकते थे । सन् 1972 में हाइडेलबर्ग विश्व-विद्यालय के दक्षिण एशिया शोध - संस्थान में भारतीय भाषाओं के प्राध्यापक डा० लोठार लुट्से से बातचीत करते हुए उन्होंने स्वीकारा है कि उनके पात्र जो भाषा बोलते हैं वह न साहित्यिक भाषा है और न वह जिसका प्रयोग उस क्षेत्र के लोग वास्तव में करते हैं । वे मगही या मैथिली बोलते हैं जो साधारण हिन्दी पाठक के लिये दुर्बोध होती । अतः उन्हें भाषा बदलनी पड़ी लेकिन इसके साथ ही उसकी प्रकृति और लय को सुरक्षित रखने की कोशिश भी करनी पड़ी ।[42]

रेणु द्वारा एक विशेष कथाक्षेत्र के चयन के पीछे उनका कोई सचेष्ट प्रयत्न या आग्रह नहीं था । एक यथार्थवादी लेखक होने के नाते उनके सामने अपने परिवेश की कहानी कहने अर्थात् अपने प्रामाणिक अनुभव को व्यक्त करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प भी नहीं था । जैसा कि रेणु की कहानियों की चर्चा करते हुए डा० रामदरश मिश्र ने कहा है, ग्राम परिवेश और अनुभव की प्रामाणिकता आपस में जुड़े हुए पहलू हैं ।[43] रेणु ने अपने परिवेश की कथा जिस शैली में कही है, वह यथार्थवादी लेखकों की शैली से विशेष भिन्न नहीं है ।

42- नया प्रतीक, जून, 1977

43- हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, पृ० 118

डा० नगेन्द्र के अनुसार स्थानीय प्रादेशिक दृश्यावली तथा वातावरण का अन्तर्भाव ; कथावस्तु की दृष्टि से जो पात्र एवं स्थान महत्वहीन है, उनका भी सूक्ष्म और सुविस्तृत चित्रण ; स्थानीय एवं सामयिक घटनाओं तथा रीति रिवाजों के विवरण ; पात्रों के कथोपकथनों में उनके सामाजिक स्तर एवं प्रदेश के अनुसार भाषा अथवा बोली का प्रयोग (चाहे वह बोली असंस्कृत या क्षुद्र ही क्यों न हो ।) आदि शिल्प-साधनों का प्रयोग यथार्थवादी लेखक सदा से करते आये हैं ।[44] अतः रेणु की रचनाओं का संबंध किसी आंचलिकता से न होकर कथा साहित्य की महान यथार्थवादी परम्परा से है ।

यह विडम्बना है कि 'आंचलिक उपन्यास' नामकरण की दुर्घटना जिसने रेणु का ही सबसे अधिक अहित किया, स्वयं रेणु के हाथों ही घटी थी । 6 दिसम्बर, 1972 को रेणु के राजेन्द्र नगर (पटना) निवास स्थान पर डा० लोठार लुट्से ने उनके साथ एक लम्बी बातचीत टेप की थी । रेणु की मृत्यु के बाद यह बातचीत 'नया प्रतीक' दिल्ली के जून 1977 अंक में छपी है । इस बातचीत के दौरान जब डा० लुट्से ने रेणु से शहरी और आंचलिक वर्ग के कथा साहित्य के भेद के विषय में उनके विचार जानने चाहे तो रेणु ने विस्तार से सारी स्थिति इन शब्दों में स्पष्ट की थी – '' यह दुष्कर्म – यह पाप भी मैंने ही किया । 'जब 'मैला आंचल' मैंने लिखा और जब उसका भीतर का टाइटल छपने को जा रहा था – तब मैंने लिखा 'मैला आंचल' और फिर मैंने उसके नीचे लिख दिया 'एक आंचलिक उपन्यास' । मैंने यह यही सोचकर किया कि मैंने जो शब्दों का इस्तेमाल किया, जैसी भाषा लिखी, क्या पता उसको लोग कबूल करेंगे या नहीं करेंगे — इसीलिये मैंने उसे आंचलिक उपन्यास कह दिया । अगर उस समय वहाँ डा० लुट्से जैसे मेरे मित्र कोई होते और कहते कि ''यह क्यों ? उपन्यास

44- मानविकी पारिभाषिक कोश : साहित्य खंड (राजकमल प्रकाशन, 1965), पृ० 219

तो उपन्यास होता है, आंचलिक क्या होता है ?'' तब शायद मैं हट जाता । लेकिन मैंने तो कह दिया । और उसके बाद लोगों ने एक खांचा बना दिया 'आंचलिक' का । और थोड़ी सी घबराहट और दुई उनको – दुई थी, लेकिन फिर एक बहाना भी मिल गया कि अच्छा चलो, यह तो 'आंचलिक उपन्यासकार' है । तो चलो आंचलिक उपन्यासकार । जैसे कि आंचलिक उपन्यास को आदमी से तो कुछ लेना देना नहीं, समस्याओं से कुछ लेना देना नहीं है । बस अंचल एक चीज़ है और अंचल आंचलिक उपन्यास है । और आंचलिक लेखन की नकल जिन लोगों ने शुरू की ज्यादा मारा उन्हीं लोगों ने । ये लोग करते थे यह कि कुछ शब्दावली नोट कर लेते थे और उसको फिर एक कहानी में घोटते थे ।''[45]

'मैला आंचल' की भाषा की स्वीकृति के विषय में आशंका के कारण ही रेणु ने उसे 'आंचलिक उपन्यास' की संज्ञा दी । मगर वे उसे प्रादेशिक, क्षेत्रीय या जनपदीय उपन्यास भी कह सकते थे । उन्होंने 'आंचलिक' विशेषण ही क्यों चुना इसका भी कारण है । 'मैला आंचल' की भूमिका में ''यह है 'मैला आंचल', एक 'आंचलिक उपन्यास' कथांचल है पूर्णिया । '' इत्यादि लिखकर उन्होंने 'आंचल' शब्द की आवृत्ति से यमक अलंकार का प्रभाव उत्पन्न करने की कोशिश की थी । ऐसा करना उस कथाकार के लिये अस्वाभाविक नहीं था जिसने कविता और तुकबंदी से अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ किया था । और फिर बिहार में सौ से लेकर डेढ़ सौ गाँवों का समूह जो राजस्व प्रशासन की इकाई हो, अंचल ही कहलाता है ।[46]

रेणु को उस दुष्कर्म या पाप का फल भी शीघ्र ही मिला । लोग उनकी शिल्पगत विशेषताओं में, उनकी विलक्षणता, यहाँ तक कि उनकी कमजोरियों में भी आंचलिक उपन्यास की परिभाषा खोजने लगे । रघुवीर सहाय ने उचित ही कहा है कि ''विलक्षणता और विचित्रता खोजकर उससे चौंकने को आतुर सहृदयों ने

45- 'नया प्रतीक', जून 1977, पृ0 11

46- "Anchal : Unit of revenue administration below sub-divisional level and above the halka level. An Anchal has about ten to twelve halkas and each halka comprises ten to twelve villages."
-Bihar District Gazetteer : Purnea (1963) Page 816

रेणु की शैली को आंचलिक कहकर अपने को नागर जताने का प्रयत्न किया था। पर वह उनके अपने व्यक्तित्व की, न आंचलिक न नागर, बल्कि विश्वसनीय अभिव्यक्ति है।''[47] जिसे भ्रमवश आंचलिक शैली का नाम दिया गया वह वास्तव में रेणु की अपनी प्रविधि है जिसके दर्शन हमें 'मैला आंचल' से काफी समय पूर्व रची गयी रेणु की कहानियों में भी होते है। उदाहरण के लिये 'रसूल मिसतिरी' नामक कहानी को लिया जा सकता है। यह कहानी 'विश्वमित्र' कलकत्ता के फरवरी 1946 के अंक में, अर्थात् 'मैला आंचल' के प्रकाशन से कम से कम आठ वर्ष पूर्व छपी थी। कहानी के आरंभ में रेणु अपनी विशिष्ट शैली में, जिसमें वर्णनात्मकता की अपेक्षा दृश्यात्मकता अधिक है, मानक भाषा की अपेक्षा 'कलोक्विअल' बोली का प्रयोग अधिक है, एक 'गंवारू' शहर के परिवर्तन को इस प्रकार अंकित करते हैं :—

''खलीफा फरीदी की फटफटाने वाली फटीचर सिंगर मशीन और उनकी कैंची के काट छांट के दिन लद गये। 'माडर्न-कट-फिट' के 'लल्लू मास्टर' का जमाना है। x x x 'रेस्ट्रां' और 'टी-स्टालों' की संख्या तो 'शाक - भाजी' की दुकानों से भी बढ़ गयी है।''[48]

इस कहानी में भी रेणु ने अपनी विशिष्ट शैली में शब्दों के आशय के साथ-साथ उनकी ध्वन्यात्मकता से भी अर्थबोध कराते हुए चेतना के अनेक स्तरों को एक ही सूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया है। रसूल मिस्त्री काम भी करता जाता है और बात भी करता रहता है जिसका वर्णन रेणु इस प्रकार करते हैं :—

''ठुक्-ठुक् -ठुक्, ठुक् - ठुक् - ठुक्

— तो समझे न जी, दोज़ख - बहिश्त, सरग-नरक सब यहीं है, यहीं। अच्छे और बुरे का नतीजा यहीं मिल जाता है। रामचन्दर बाबू को

47- रघुवीर सहाय, ''कवि की यात्राएं'' (देखिए रेणु की मरणोपरान्त प्रकाशित कृति 'ऋण जल धन जल', पृ0 9)

48- 'विश्वमित्र' कलकत्ता, फरवरी 1946, पृ0 44

देखो न । - - - - अरे रहीम । ज़रा पैंचकश फेंकना तो — रामचन्दर बाबू — अरे भाई छोटा वाला..... ''[49] इत्यादि इत्यादि ।

रेणु के साथ 'आंचलिक उपन्यासकार' का लेबल चिपक जाने से उनके मन में कैसी प्रतिक्रिया हुई थी इसका कुछ - कुछ आभास 'दीर्घतपा' उपन्यास की भूमिका में मिल सकता है । भूमिका के आरंभ में ही रेणु अपनी परेशानी इस प्रकार व्यक्त करते हैं — ''यह उपन्यास.... नहीं, आंचलिक नहीं.... हाँ, आंचलिक ही.... किन्तु..... अर्थात् यह उपन्यास उपन्यास है । ''[50] रेणु को तब तक शायद अपनी गलती का एहसास हो चुका था जिससे लोगों में वे कथाकार के रूप में नहीं, मात्र आंचलिक लेखक के रूप में पहचाने जाते थे ।

प्राय: यह माना जाता है कि तथाकथित आंचलिक या रीजनल कथाओं में लेखक का उद्देश्य किसी क्षेत्र या अंचल विशेष को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करना होता है । उपन्यास के विस्तृत पटल पर ऐसा किया जा सकता है । परन्तु क्या कहानी के छोटे से कैनवस पर, पिन-होल कैमरा के दृश्य-पट पर ऐसा करना संभव है ? एक कहानी किसी अंचल विशेष की कितनी विशिष्टताओं को अपने में समा सकती है ? उसके सीमित विषय-क्षेत्र में उस अंचल विशेष की समग्रता कैसे उभरेगी ? निर्मल वर्मा ने भी रेणु पर चिपकाए गये इस आंचलिक लेबल का विरोध करते हुए लिखा है — '' रेणु का स्थान यदि अपने पूर्ववर्ती और समकालीन आंचलिक कथाकारों से अलग और विशिष्ट है तो वह इसमें है कि आंचलिक उनका सिर्फ परिवेश था, उसके भीतर बहती जीवनधारा स्वयं अपने अंचल की सीमाओं का उल्लंघन करती थी । रेणु का महत्व उनकी आंचलिकता में नहीं, आंचलिकता के अतिक्रमण में निहित है । बिहार के एक छोटे भूखंड की हथेली पर उन्होंने समूचे उत्तरी भारत के किसान की नियति रेखा को उजागर किया था ।[51] रेणु ने जिन

49- वही, पृ० 45

50- 'दीर्घतपा' (बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना) भूमिका

51- देखिए ''मैला आंचल'' (रेणु) के आरंभ में निर्मल वर्मा का लेख, 'समग्र मानवीय दृष्टि', पृ० 18.

स्थितियों और पात्रों की सृष्टि की है, वे भारत के किसी भी भाग के लिये अजनबी नहीं लगते । अज्ञेय ने उचित ही कहा है कि रेणु '' हर बार हवा में हाथ बढ़ाते थे और पकड़ लाते थे एक नया और अभूतपूर्व पंछी... और ऐसा पंछी जिसे देखकर हम कहें कि 'इसे हमने पहले कभी नहीं देखा', लेकिन पहचानें कि 'अरे, इसे तो हम हर रोज देखते हैं'।" [52] यही कारण है कि रेणु का कथा-साहित्य पाठक के मन में विलक्षणता का नहीं, आत्मीयता का प्रभाव उत्पन्न करता है ।

फणीश्वरनाथ रेणु को 'आंचलिक कथाकार' मानके उनके क्षेत्र को सीमित करने की प्रवृत्ति के पीछे एक मासूम गलती, नासमझी ही नहीं, कुछ और भी दिखाई देता है । डा० शिवकुमार मिश्र ने बात की तह तक पहुँचने की कोशिश करते हुए स्पष्ट लिखा है कि '' जब रेणु को महज एक आंचलिक कथाकार के रूप में सीमित कर देने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है तो हर उस आदमी का हैरान हो उठना स्वाभाविक है जिसने उनकी कृतियों के माध्यम से एक पूरे के पूरे देश की व्यथा-कथा से परिचय प्राप्त किया था । x x x रेणु या नागार्जुन जैसे रचनाकारों के संबंध में आंचलिकता की खास चर्चा करने वालों में कुछ की नीयत इस कारण साफ मालूम नहीं पड़ती कि इस प्रकार की बात करके वस्तुतः वे उन्हें प्रेमचन्द की सशक्त तथा जीवन्त परंपरा से काट देना चाहते हैं, जबकि रेणु हिन्दी के उन कथाकारों में हैं जिन्होंने आधुनिकतावादी फैशन की परवाह न करते हुए, कथा साहित्य को एक लम्बे अर्से के बाद प्रेमचंद की उस परंपरा से फिर से जोड़ा जो बीच में मध्यवर्गीय नागरिक जीवन की केन्द्रीयता के कारण भारत की आत्मा से कट गयी थी ।''[53]

इसी प्रकार डा० कुँवरपाल सिंह ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना' में रेणु के कथा-साहित्य का संबंध व्यक्तिवादी उपन्यासों के विरोध

52- अज्ञेय, ''कितनी सरी थी रेणु की यह दुनिया' (रेणु: संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित), पृ० 3

53-डा० शिवकुमार मिश्र, 'प्रेमचंद की परंपरा और फणीश्वरनाथ रेणु'(रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित), पृ० 49-50

में राजनीतिक और सामाजिक वर्ग संघर्ष की भावभूमि पर रचे गये उपन्यासों की परंपरा से जोड़ते हुए लिखा है — ''यह शायद सुनियोजित षडयन्त्र था कि उस धारा के उपन्यासों को प्रकाश में नहीं आने दिया गया और वे लगभग उपेक्षित से रहे। 'बलचनमा', 'वरुण के बेटे', 'गंगा मैया' आदि कुछ ऐसे ही उपन्यास हैं। 'मैला आँचल' में संभवतः पहली बार गाँवों में भूमि व्यवस्था के बदलते रूपों को चित्रित किया है और 'परती : परिकथा' में ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में आरंभ हुए औद्योगीकरण की ओर संकेत किया गया है। कथ्य और शिल्प दोनों की दृष्टि से ये उपन्यास बहुत लोकप्रिय भी हुए, लेकिन एक बार फिर सुनियोजित ढंग से वास्तविक समस्याओं और बदलते आर्थिक सामाजिक परिवर्तनों से ध्यान हटाने की कोशिश की गयी। इन कृतियों पर 'आँचलिकता' का लेबल लगाकर निरन्तर इनका महत्व कम करने का प्रयास किया गया और इस आँचलिकता के बिल्ले से छुटकारा पाने के लिये ''मैला आँचल'' और 'परती : परिकथा' के बाद 'दीर्घतपा' और 'जुलूस' जैसे उपन्यास मिले।''[54]

इस सारी बहस से यह बात असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो जाती है कि फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य में 'आँचलिकता' को खोजने, अथवा आँचलिकता के कृत्रिम और निरर्थक मापदण्डों के आधार पर उनके साहित्य को परखने की कोशिश से उनका सही मूल्यांकन नहीं हो सकता है। रेणु का अध्ययन एक ऐसे यथार्थवादी और जनवादी कथाकार के रूप में होना चाहिए जिसकी शक्ति – जार्ज लूकाच के शब्दों में — उसका जनप्रेम, जनविरोधियों के साथ-साथ जनता की अपनी भ्रान्तियों के प्रति घृणा, सत्य और यथार्थ को उद्घाटित करने की अदम्य इच्छा तथा समस्त मानवता की उज्ज्वल भविष्य की ओर प्रगति में अडिग आस्था है।[55]

●

54- डा० कुँवरपाल सिंह, 'हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना' (पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976), पृ० ।।

55- Georg Lukacs, 'Studies in European Realism', Page 19

अध्याय - 2

रेणु का कथा - शिल्प

किसी साहित्यिक कृति में कथ्य या मूल-वस्तु का महत्व निर्विवाद है । परन्तु कृति या अंतिम वस्तु में उस कथ्य या मूल वस्तु के अतिरिक्त और भी कुछ होता है । मूल वस्तु को अंतिम वस्तु का, अथवा कथ्य को कृति का रूप देने के लिए लेखक जिन युक्तियों का प्रयोग करता है वे ही शिल्प है । शिल्प वह माध्यम है जो अनुभूति को अभिव्यक्ति में बदल देता है । अतः लेखक के मूल अनुभव को छोड़कर कृति में जो कुछ भी हो, उसे शिल्प के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

शिल्प अपने में कोई निरपेक्ष इकाई नहीं है । प्रत्येक अनुभूति अपने लिए उचित माध्यम तथा अपनी सशक्त अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त उपकरणों की माँग करती है । अपने कथ्य को सही ढंग से अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से.. लेखक असंख्य सम्भावनाओं में से कुछेक को चुनने के लिए विवश होता है और चुनने की यह प्रक्रिया ही शिल्प-चेतना है । इस दृष्टि से विचार करने पर शिल्प रूपवादी रीतिवादी सीमाओं से मुक्त होकर लेखक के उद्देश्य से जुड़ जाता है । यह भी कहा जा सकता है कि शिल्प एक प्रकार से कथ्य का ही विस्तार है ।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में चित्रित मानव-स्थितियाँ जिस प्रकार अजीब दीखने के बावजूद भी चिर-परिचित लगती हैं, उसी प्रकार उनका कथा-शिल्प भी अटपटा दीखने के बावजूद बहुत ही सहज और स्वाभाविक है । रेणु का कथा शिल्प उन्हीं को अटपटा लगता है और उन्हीं लोगों को इससे सबसे अधिक आघात भी लगता है जो चुस्त-दुरुस्त, तथा एक सरल रेखा में चरम सीमा तक पहुँच कर समाप्त होने वाली कहानियाँ पढ़ने के आदी हों ; अथवा जो कहानी की शास्त्रीय परिभाषाओं के आधार पर उसमें 'शुद्धता' की माँग करते हों । जिन्होंने पाठ्य-पुस्तकों में यह पढ़ा हो कि कहानी (शार्ट स्टोरी) में मुख्य कथा के अतिरिक्त अन्य

कोई उपकथा या प्रासंगिक कथा नहीं होती है, तथा इस में पात्रों की संख्या तीन चार से अधिक नहीं होती है, उन्हें यह देखकर सचमुच परेशानी होती है कि रेणु की कहानियों में मुख्य कथा के साथ - साथ प्रासंगिक कथाएँ ही नहीं, अनेक उपाख्यान, वृत्तान्त, असम्बद्ध प्रसंग, गप्पें, अफवाहें, चुटकले तथा दर्जनों उपस्थित पात्रों के साथ बीसियों अनुपस्थित व्यक्तियों के किस्से मिलते हैं । सम्भवतः इसी कारण कुछ लोगों को यह शिकायत है कि रेणु की कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से 'ढीली' हैं । परन्तु तथ्य यह है कि रेणु का कथा-संसार इस वास्तविक संसार का बहु आयामी प्रतिरूप है । शुद्धता और शास्त्रीयता का मोह त्यागकर उन्होंने जन-जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों को इस प्रकार काट-छाँट कर परस्पर जोड़ा है जिससे समय के यथार्थ और मानव नियति का एक 'कोलाज' हमारे सामने उभरता है । इस बात को रेणु की कहानियों की संरचना की परीक्षा से स्पष्ट किया जा सकता है ।

कहानियों की संरचना :

कहानी की संरचना से तात्पर्य उसका नियोजित ढाँचा है ।[1] इसके अन्तर्गत कहानी में वर्णित विभिन्न प्रसंग और विवरण तथा उनका संगुम्फन और संघटन आता है । रेणु की कहानियों की विशेषता यह है कि उनमें आवश्यक वर्णन के साथ - साथ मुख्य कथा के विकास की दृष्टि से विषयान्तर से लगने वाले अनावश्यक(?) प्रसंग और विवरण भी मिलते हैं । परन्तु ये अनावश्यक दीखने वाले विवरण वास्तव में अनावश्यक नहीं, बल्कि कथा संरचना के महत्वपूर्ण घटक हैं । इन विवरणों का प्रभाव बड़ा ही सूक्ष्म तथा कहानी के समग्र प्रभाव में संयोजक होता है । ये विवरण

1- 2 The planned frame work of a literary selection".
– Harry Shaw, 'A Dictionary of Literary Terms.'

कथानक के न सही, कथात्मकता के अविच्छिन्न अंग होते हैं । यहाँ कथानक (प्लाट) और कथात्मकता (नैरेटिव) के मध्य अन्तर को समझना आवश्यक है । कथानक कहानी के मोटे कथा सूत्रों को कार्य-कारण संबंध में बाँधने वाली वह सरल रेखा है जिसका संबंध हमारी उत्सुकता - वृत्ति के साथ होता है । कथात्मकता का निर्माण कथानक की सरल रेखा के चारों ओर बिखरे बिन्दुओं से होता है जो कहानी को गहराई देते हैं और जिनका संबंध जनजीवन के साथ हमारी स्वाभाविक रुचि से होता है । नार्थ्रोप फ्राइ ने कथानक और कथात्मकता के मध्य अन्तर बहुत ही सटीक शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है — ''कथानक उन वृक्षों और भवनों के समान है जिन पर रेलगाड़ी की खिड़की से हमारी दृष्टि पड़ती है । कथात्मकता उन झाड़-झंखाड़ और रोड़े - कंकड़ के समान है जो हमारी आँखों के आगे से अग्रभूमि में तेज तेज गुजरते हैं ।''[2]

अन्य नये कहानीकारों की तरह रेणु ने भी प्लाटवादी कहानियाँ बहुत कम लिखी हैं । किन्तु उनकी प्रायः सभी कहानियों में उपरोक्त कथात्मकता . . अनेक प्रसंगों, उपाख्यानों, वृत्तान्तों और मिथकों के रूप में दृष्टिगोचर होती है । इस कथात्मकता का, जिसे डा० नामवर सिंह ने कहानीपन की संज्ञा दी है, कहानी में वही स्थान है जो स्थान कविता में लय का है ।[3] सच तो यह है कि छोटे छोटे प्रसंगों तथा विवरणों से निर्मित यह कथात्मकता रेणु की कहानियों को एक लय भी प्रदान करती है ।

2-"The plot, then, is like the trees and houses that we focus our eyes on through a train window : the narrative is more like the weeds and stones that rush by in the foreground."

- Northrop Frye, "Myth,Fiction, and Displacement", in William J. Handy and Max West brook, ed. Twentieth Century Criticism ; The Major statements, (Indian Edition, 1976) Page 157

3- कहानी : नयी कहानी, पृ० 30

रेणु की कुछेक कहानियों की संरचना की परीक्षा से लेखक की कथात्मक - पद्धति को सहज ही पहचाना जा सकता है । वे किसी व्यक्ति, या किन्हीं व्यक्तियों के जीवन से संबंधित प्रसंगों को काट-छूट कर तथा उनके आपसी कार्यकारण सम्बंध को तोड़कर उन्हें भाव-साम्यर्य या अन्य किसी सूत्र के सहारे फिर से जोड़कर एक 'स्टक्चर' खड़ा करते हैं । 'तीन बिंदियाँ' कहानी की गीताली के विषय में यह लिखकर कि ''इस जिन्दगी के कुछ अंश को काट लेती है, गीताली, टुकड़े-टुकड़े करती है, मसल डालती है । फिर, चूर्ण-विचूर्ण क्षणों की सुर-कणिकाओं को सहायक नाद की सहायता से परखती है ''[4], रेणु मानो अपनी इसी पद्धति की ओर संकेत करते हैं । सहायक नाद से रेणु का क्या तात्पर्य है, इसकी चर्चा आगे की जायगी । यहाँ उनकी कथात्मक संरचना को उनकी कुछ कहानियों के संदर्भ में देखने का प्रयत्न किया जायगा ।

'रसप्रिया' रेणु के प्रथम कहानी-संग्रह 'ठुमरी' की पहली कहानी है । बूढ़े पंचकौड़ी मिरदंगिया का चरवाहे बालक मोहना की अपूर्व सुन्दरता को ·· देखकर आश्चर्य चकित हो जाना ही वह बिन्दु है जिससे इस कहानी का आरंभ होता है । मोहना पंचकौड़ी मिरदंगिया से यह पूछकर कि क्या उसकी उँगली रसप्रिया बजाते टेढ़ी हुई है, मानो उसकी दुखती रग को छेड़ता है । बूढ़े मिरदंगिया के साथ - साथ पाठक भी यह जानने के लिये उत्सुक हो उठता है कि मोहना से यह बात किसने कही ? मोहना कौन है ? पंचकौड़ी कौन है ? वह व्यक्ति कौन है जिसने मोहना से मिरदंगिया की उँगली टेढ़ी होने की बात कही है ? उँगली टेढ़ी होने का असली रहस्य क्या है ? ये प्रश्न पाठक के मन में अनेक जिज्ञासाएँ उत्पन्न करते हैं । यद्यपि कथा में इन सभी प्रश्नों के समाधान, या कम से कम इस हेतु कुछ संकेत मौजूद हैं, फिर भी लेखक का मुख्य उद्देश्य

4- ठुमरी (राजकमल प्रकाशन, पंचम आवृत्ति, 1977), पृ० 158

इस प्रकार की जिज्ञासाओं को शान्त करना नहीं है । उन्होंने इन पात्रों के जीवन के विभिन्न प्रसंगों, इनके विषय में फैली अफवाहों तथा इनके परिवेश से संबंधित अनेक वृत्तान्तों को जाहिरी तौर पर बेतरतीबी से प्रस्तुत किया है जिससे एक मानवीय स्थिति अपने अनेक आयामों में मूर्तिमान हो जाती है । मोहना उसी रमपतिया का बेटा है जिसे पंचकौड़ी किन्हीं कारणों से अपनी नहीं कर सका था । मोहना जैसा बेटा पाकर रमपतिया 'महारानी' है, यह एहसास मानों उसे अपने अपराध-बोध से मुक्त करता है । वह मन में निश्चय करता है कि अब वह रसप्रिया नहीं निर्गुण गायेगा —— 'रसप्रिया' का मुख्य कथा-सूत्र यही है । परन्तु कहानी की सम्पूर्ण-संरचना में इस का महत्व यत्र-तत्र बिखरे लघु प्रसंगों अथवा उपाख्यानों, यथा परमानपुर में एक ब्राह्मण के लड़के को बेटा कहने पर पंचकौड़ी की मार-पिटाई होना, कमलपुर के नन्दू बाबू के यहाँ उसे दो जून भोजन और चार मीठी बातें नसीब होना, शीभा मिसर के छोटे लड़के का उसे बेपानी करना, मिरदंगिया का पुराने दिनों के प्रति 'नास्टैल जिआ' और यह पीड़ा कि क्या कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जायगी, लोक गीत की वह पंक्ति जिसमें खेतों में काम करने वाले हलवाहों और मजदूरों से कोई विरही पूछता है कि किसी ने उसकी रूठी हुई धनी को तो नहीं देखा, गुलाबबाग मेले में मिरदंगिया की रमपतिया से भेंट और कमलपुर के नन्दू बाबू का नाम लेकर उसका उस पर लांछन लगाना, मोहना का नन्दू बाबू के यहाँ नौकरी करना और उसकी बड़ी-बड़ी आँखों का नन्दू बाबू की आँखों जैसी होना तथा आकाश में उड़ने वाली चील के मोटीफ आदि से अधिक नहीं है । यही प्रसंग और उपाख्यान अन्यथा भावुकतापूर्ण कथा को समाज सापेक्षता और परिणामस्वरूप अर्थ प्रदान करते हैं ।

'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम' रेणु की कदाचित सर्वाधिक चर्चित कहानी है । कहानी का आरंभिक बिन्दु है एक छोटा सा वाक्य —'हिरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है ।'' इस वाक्य के तुरन्त बाद ही कहानी

में फ्लैश बैक के द्वारा हिरामन की पहली दो कसमों से संबंधित घटनाओं और प्रसंगों का वर्णन मिलता है और तब हिरामन की पीठ में गुदगुदी लगने का ठहरा हुआ बिन्दु फिर से हरकत करने लगता है । परन्तु जिस पथ पर वह आगे बढ़ता है वह कोई सरल रेखा न होकर एक अनियमित और वक्र रेखा है । हिरामन और हीराबाई की परस्पर स्निग्धता और आकर्षण से चलकर यह कथा-बिन्दु अनेक बिखरे-छिटके प्रसंगों से गुजर कर कथा के अन्त में अलगाव की नियति तक पहुँचता है । ये बिखरे - छिटके प्रसंग है —— हीराबाई की नजाकत और नफासत के मुकाबले में चालीस साल के हट्टे-कट्टे काले कलूटे देहाती नौजवान हिरामन का उजड्ड पूर्ववृत्तान्त, हिरामन की गप्पबाजी, नामलगर ड्योढ़ी के राजा की कहानी जिसके घर 'देवता' ने जन्म लिया था और जिसे लाट साहब भी नहीं, सिर्फ लाटनी पहचान सकी थी, थोड़ लद्दू बनियों के साथ हिरामन का मजाक, गाँव के बच्चों का गाड़ी देखकर रटे अन्दाज में 'लाली लाली डोलिया में लाली रे दुलहिनियाँ' गाना और हिरामन का दिवा-स्वप्न कि वह सचमुच दुलहिन लेकर लौट रहा है, महुआ घटवारिन का गीत जो कहानी को प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करता है, हिरामन के साथी गाड़ीवानों के किस्से, लाल मोहर का हीराबाई से कचराही बोली में बात करके यह जताना कि वह हिरामन से अधिक पावर वाला आदमी है, दास बैस्नव पलटदास जिसे नौटंकी की दास्तान 'रमैन' की ही बात और गुलबदन बनी हीराबाई सिया सुकुमारी दिखाई देती है, लक्ष्मनवाँ का, जिसे सब से अच्छा जोकर का पार्ट लगा था, हीराई बाई की साड़ी धोकर अपने को भाग्यशाली समझना, इन लोगों का अन्य तमाशबीनों के साथ झगड़ा , इत्यादि इत्यादि । ये सारे छोटे - छोटे प्रसंग और वृत्तान्त कहानी की संरचना के महत्वपूर्ण घटक है और मुख्य कथा की सतह से नीचे जाकर उसे गहराई प्रदान करते है ।

'हाथ का जस' बाक का सत्त', 'विघटन के क्षण', 'अच्छे आदमी' आदि कहानियों की संरचना भी इस प्रकार विविध प्रसंगों और उपाख्यानों

को जोड़कर खड़ी की गई है । 'तबे एकला चलो रे' यद्यपि एक 'ड्रामाटिक मोनोलाग' है फिर भी उसमें किसी प्रकार की नाटकीय प्रत्यक्षता नहीं, जीवन के लघु प्रसंगों का बिखराव मिलता है । 'एक आदिम रात्रि की महक' में कामा की आदिम तृषा की कहानी ही नहीं, बीसियों पात्रों के बीसियों किस्से भी मिलते है । संरचना की दृष्टि से 'रेखाएँ : वृत्तचक्र' भी रेणु की उल्लेखनीय कहानी है । इसमें न केवल विभिन्न व्यक्तियों के जीवन से सम्बद्ध विभिन्न प्रसंगों का संगुम्फन मिलता है, अपितु अनुभूत वर्तमान के साथ - साथ भोगे हुए अतीत तथा सम्कल्पा की स्थिति में स्वप्न आदि के रूप में देखे गये अनागत का भी कलात्मक रचाव दृष्टिगोचर होता है । रेणु की कहानियों में बिखरे ये विभिन्न प्रसंग और विवरण उनके प्रभाव की एकान्विति में कोई बाधा नहीं डालते । बल्कि ये उसे और भी संश्लिष्ट और तीव्र बनाते हैं । परन्तु आश्चर्य है कि रेणु की बाद की कहानियों में, विशेषकर 'अगिनखोर' संग्रह की कहानियों में, इस तरह की कोई जटिल संरचना नहीं मिलती है । ऐसा लगता है कि जीवन के अन्तिम दिनों में अपनी कथा-भूमि से कट जाने के कारण न केवल उन्हें वर्ण्य - विषय का टोटा पड़ा था, बल्कि उनकी शिल्प - चेतना भी कुछ मंद पड़ गयी थी । 'अगिनखोर' की अधिकांश कहानियाँ रचनात्मक दबाव की अपेक्षा किसी व्यवसायिक माँग को पूरा करने के लिए लिखी गई लगती हैं । 'रसप्रिया', 'तीसरी कसम', 'लाल पान की बेगम', 'एक आदिम रात्रि की महक' के रचनाकार की लेखनी से निःसृत 'काकू चरित', 'जड़ाऊ मुखड़ा', 'जैव', 'अक्ल और भैंस' जैसी चुस्त दुरुस्त, सीधी रेखा में चलने वाली 'शास्त्रीय' तथा एकायामी कहानियों को पढ़कर आश्चर्य ही नहीं, दुःख भी होता है ।

मुख्य नाद : सहायक नाद :

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-शिल्प को उनकी कहानी 'तीन बिंदियाँ' के आलोक में भली भाँति समझा जा सकता है । 'तीन बिंदियाँ' ठुमरी गायिका

गीताली की कहानी है । गीताली की सफलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उसने अपनी बड़ी बहिन विशुद्ध (?) ठुमरी गायिका गीताली की गलतियों से लाभ उठाया है, बहुत कुछसीखा है । इस सफलता का रहस्य, अर्थात् गीताली की गलतियों से मिलने वाली शिक्षा का मूलमन्त्र है सहायक नाद की महिमा । कहानी में गीताली के इस 'सहायक नाद' की व्याख्या कुछ इस प्रकार की गयी है — ''- - - सहायक नाद । जिसको ओवरटोन कहते है । नाद कभी अकेला उत्पन्न नहीं होता । उसके साथ-साथ अन्य नादों का भी जन्म होता है । उस स्वर को हम सुन पाएँ अथवा नहीं, मूल नाम से उत्पन्न होने वाले इन नादों को सहायक नाद कहा जाता है । स्वयं ही जन्म लेने के कारण इन्हें स्वयंभू स्वर भी कहते है । गीताली ने इन्हीं स्वरों की सहायता से सिद्धि और प्रसिद्धि प्राप्त की है ; प्रार्थना के सुर में हरदम बजती हुई जिन्दगी के सुर-ताल की सीमा से कभी बाहर नहीं गई । सीमा को विस्तृत अवश्य किया उसने ।''[5]

गीताली की तरह ही रेणु ने भी इन सहायक नादों की महिमा को पहचाना था । उन्हें यह शास्त्रीय सिद्धान्त मान्य नहीं था कि कहानी जीवन के किसी एक पक्ष की ही झाँकी प्रस्तुत करती है । वे जानते थे कि जीवन का कोई भी पक्ष जीवन के अन्य पक्षों से निरपेक्ष नहीं होता है । कोई भी प्रसंग अपने में पूर्ण, स्वतन्त्र, अथवा अन्य प्रसंगों से असम्पृक्त नहीं होता है । जीवन के सभी प्रसंग एक दूसरे के पूरक होते है । अतः उन्होंने कहानी लेखन में उसी पद्धति का प्रयोग किया है जिसका प्रयोग उनकी कथा - नायिका गीताली अपनी संगीत साधना में करती थी । 'तीन बिंदियाँ' में इस पद्धति के विषय में रेणु का कहना है — ''इस जिन्दगी के कुछ अंश को काट लेती है, गीताली, टुकड़े-टुकड़े करती है, मसल डालती है । फिर, चूर्ण-विचूर्ण क्षणों की सुर-कणिकाओं

5- ठुमरी, पृ० 157-58

को सहायक नाद की सहायता से परखती है । डाट- डाट - डाट । गीताली इन नन्ही - नन्ही तीन बिंदियों को, आँखों के सामने शून्य में उभरने वाली छोटी छोटी तारिकाओं को, अब अच्छी निगाह से देखती है ; पहचानती है इस शुभ चिह्न को ।.../ ''[6]

रेणु अपनी कहानियों में असम्पृक्तता का आभास देने वाले प्रसंगों, संवेदों, अथवा चेतना के विभिन्न स्तरों को डाट - डाट - डाट (.../), अर्थात् इन्हीं तीन बिंदियों से परस्पर जोड़ते हैं । उन्हें यह एहसास था कि ''साधारण पाठक अधिकांश ऐसी बिंदी - बूटेदार रचनाओं को भली नजर से नहीं देखते । सारी किताब में, पृष्ठ और पंक्ति में यत्रतत्र साबों के दाने की तरह बिखरी हुई बिंदियों के बाहुल्य से पाठकों की आँखें किरकिराने लगती हैं ।''[7] परन्तु गीताली जो 'तीन बिंदियाँ' कहानी की मुख्य - पात्र ही नहीं, रेणु की मुखपात्र भी है, इन बिंदियों का रहस्य और इनकी शक्ति भली - भाँति पहचानती है — ''तीन बिंदियों के सहारे अप्रासंगिक प्रसंगों और असंलग्न मुहूर्तों को समायित करने वाले, किसी अन्य जगत् की हलकी झलक दिखाने वाले, प्याज के छिलके उतारने वाले, ऐसे किसी शब्द - शिल्पी से कभी भेंट हो तो गीताली कहेगी — मानो या न मानो ; ये हैं सहायक नाद के चिह्न । पूछेगी, इस ओवरटोन या सहायक नादों की सृष्टि स्वयं ही नहीं होती क्या । मन की अनगिन खिड़कियों से झाँकने वाले चेहरे खुद नहीं बोलते क्या ?.../ बात बोलेगी, मैं नहीं । राज खोलेगी बात ही ।.../ किसी शिल्पी का जवाब गीताली के मन- बन में कौन पक्षी रट रहा है ।... ''[8]

6- वही, पृ० 158

7- वही, पृ० 159

8- वही

जैसा कि पहले संकेत किया गया है, रेणु की कहानियों में इन सहायक नादों का महत्त्व मुख्य नाद से कम नहीं है । 'तीर्थोदक' कहानी में मुख्य नाद है लल्लू की माँ का पति और पुत्रों से कोई प्रोत्साहन न पाने के बावजूद भी तीर्थयात्रा के लिए चल पड़ना । इस मुख्य नाद के साथ - साथ उत्पन्न होने वाले सहायक नाद हैं — लल्लू की माँ की मोतिया की माँ के प्रति उमड़ी आत्मीयता ; बड़े बेटे शंकर का (लल्लू की माँ के अनुसार) अपनी बीबी को डाक्टर से जाँच कराने के बहाने 'अटना पटना, इल्ली दिल्ली' दिखला लाना ; मंझले बेटे विष्णु का (लल्लू के पिता के अनुसार) अपनी बहिन को साथ लाने में लाज अनुभव करना और कालिज से नागा करके भैया की साली को मुंगेर से जमालपुर पहुँचाना ; रेलगाड़ी में घूटर साह की बूढ़ी का लोटा खो जाना और फलस्वरूप साह और सहुआइन में 'ठण्डी लड़ाई' चलना और तब कुछ समय बाद खंखड़ ओझा का कान पर से जनेऊ उतारते हुए लोटा लेकर टट्टी से निकलना ; शशिकान्त की पत्नी की व्यथा कथा, उसका अघोरी बाबा के पास जाना और वहाँ से लौटकर डोमन की माँ के साथ झगड़ना ; बिना माँ की बेटी अन्नपूर्णा का यात्रियों की सेवा करना आदि उपाख्यान और उनके जुड़े बहुत सारे प्रसंग । इसी प्रकार 'कस्बे की लड़की' में सरोज के देहात से हजारीबाग शहर आकर प्रियव्रत के साथ घूमने के मुख्य नाद के साथ - साथ बीसियों सहायक नाद भी कहानी के पृष्ठों पर उभरते हैं जिनमें से कुछ हैं — प्रियव्रत की भतीजी बूंदी की हरकतें ; प्रियव्रत की भाभी की आध दर्जन बहनों का उनके यहाँ खाली हाथ आना और खाने पीने में नखरे करना ; भाभी का सरोज पर झूठी तोहमत लगाना पर सोने की सिकरी का भाभी के बक्से से ही निकलना ; राम निहोरा प्रसाद का बिना कारण सरोज की पीठ पर मुक्के मारना ; राम भाई (जिसका नाम सरोज श्रद्धा से बार-बार लेती है) और उनका आकर्षक व्यक्तित्व के अभाव में असफल जीवन ; रिक्शे वाले या मुखर्जी परिवार की सुन्दरियों का सरोज की साँवली स्थूल काया को लक्ष्य करके हँसना ; प्रियव्रत का खेल खेल में

'लाजवन्ती लता' को छड़ी की मार से सुला देना तथा ऐसे ही अनेकानेक प्रसंग । ये सहायक नाद रेणु की कहानियों की मुख्य कथा के अस्थिपंजर में रक्त-मांस ही नहीं भरते, उसमें प्राणों का भी संचार करते हैं । रेणु समग्र कथा स्थिति को किन्हीं पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के विश्लेषण द्वारा नहीं, अपितु रोजमर्रा के परिचित पात्रों और जीवन की सामान्य स्थितियों के सहारे उभारते हैं । जैसा कि नाक्स सी० हिल की मान्यता है, इस प्रकार की लेखन पद्धति कृति की पठनीयता ही नहीं, उसकी नाटकीयता भी बढ़ाती है ।[9] कहने की आवश्यकता नहीं कि ऊपरी तौर पर दीखने वाले टीलेपन के बावजूद रेणु की कहानियों में यह नाटकीयता और कसाव पर्याप्त मात्रा में है । दूसरी और अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये अप्रासंगिक व्यक्ति-प्रसंग कहानी के पात्रों को उनके परिवेश से जोड़ते हैं जिस कारण रेणु की कहानियाँ, किन्हीं व्यक्तियों की नहीं, एक समष्टि की कहानियाँ बनकर हमारे सामने आती हैं ।

ठुमरी - धर्मी कहानियाँ :

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने प्रथम कहानी - संग्रह का नाम 'ठुमरी' रखा है, यद्यपि उसमें 'ठुमरी' नाम की कोई कहानी नहीं है । शब्द कोशों के अनुसार ठुमरी एक चलता गाना है जिसमें कई रागों का मिश्रण हो । यह कई हलके रागों और तरह - तरह की धुनों में गाई जाती है । रेणु की कहानियों में

9- "When, for example, the characters and situations in a piece of literature seem to be as vividly presented to us as the persons and situation of our everyday experience (and this could result from a mode of presentation which does not reveal innermost thoughts and feelings) we may almost lose ourselves in the work. When we do this, our reaction, to the work are immediate and the work tends to become dramatic".

- Knox C.Hill, 'Interpreting Literature (University of Chicago Press, 1966) Page 93

अनेक कथाओं, उपकथाओं, परिकथाओं, उपाख्यानों, अफवाहों, विविध प्रसंगों, नाना प्रकार के अप्रासंगिक विवरणों की ही नहीं, रूप, रस, गंध और नाद का भी मिश्रण मिलता है। इसीलिये रेणु ने इन्हें 'ठुमरी - धर्मा कहानियाँ'[10] और डा० नामवर सिंह ने 'मिश्रित शिल्प की कहानियाँ'[11] कहा है। ठुमरी कभी 'शुद्ध' नहीं हो सकती। चाहे कथा-साहित्य हो या संगीत - साधना, जो 'विशुद्ध' ठुमरी गाने की कुचेष्ठा करेगा, उसकी नियति गीताली की बहिन गीताली की संहित कला साधना से भिन्न नहीं हो सकती। जो कथाकार अपने कथ्य को 'शुद्धता' की मुट्ठी में कसने की कोशिश करेगा, उसकी कहानी का सारा कथा-रस निचुड कर कसी मुट्ठी की उँगलियों से बह जायगा और शेष केवल छूँछ रह जायगा। कहानी ही नहीं, कोई भी साहित्यिक विधा या कला शुद्ध नहीं हो सकती। विभिन्न साहित्य-रूपों और कलाओं में परस्पर विनिमय होता रहा है और होना ही चाहिए। जैसा कि डा० नामवर सिंह ने कहा है, इस विनिमय से बेशक वे लोग परेशान होंगे जिनके लिये हर विधा एक ईश्वर - प्रदत्त (?) चौखटा है।[12] इस 'शुद्धता' को अस्वीकार करने के कारण ही रेणु की कहानियों में स्ट्रक्चर के स्तर पर रिपोर्ताज, रेखाचित्र, ध्वनि रूपक, फिल्मी दृश्य-लेख, पुराण कथा, लोक गीत, लोक वार्ता, गपबाजी आदि का, तथा टेक्चर के स्तर पर रूप, रस, नाद और गंध का मिश्रण मिलता है। रेणु 'तीसरी कसम' के हिरामन की तरह ही 'गप रसाने का भेद जानता है।' उनकी लोकरस से ओतप्रोत कहानियाँ चुस्त दुरुस्त कहानियों की तरह किसी 'पैटर्न' का निर्माण करने की अपेक्षा एक 'रिद्म' (लय) का सृजन करती है। और, जैसा कि ई० एम० फार्स्टर का मत है, कला की दृष्टि से 'रिद्म' 'पैटर्न' से ऊँची उपलब्धि है।[13]

10- ठुमरी (स्वर लिपि)

11- कहानी : नयी कहानी, पृ० 57

12- वही

13- E.M. Forster, Aspect of the Novel (Pelican 1976) Chapter on Pattern and Rhythm.

फणीश्वर नाथ रेणु ने उपन्यास और कहानियाँ ही नहीं, रिपोर्ताज भी लिखे हैं । बिहार के सूखे और बाढ़ तथा नेपाल की सशस्त्र क्रान्ति के विषय में उनके रिपोर्ताज उनके मरणोपरान्त 'ऋणजल : धनजल' तथा 'नेपाली क्रान्ति-कथा' नाम से पुस्तकाकार छपे हैं । रेणु ने कुछ कहानियों में भी रिपोर्ताज की शैली को ही अपनाया है । 'ठुमरी' संग्रह की 'तीर्थोदक' तथा 'आदिम रात्रि की महक' संग्रह की 'पुरानी कहानी : नया पाठ' और ' ना जाने केहि वेष में' कहानियाँ एक प्रकार से रिपोर्ताज ही हैं । अन्तर केवल इतना है कि इनके पात्र और स्थितियाँ वास्तविक न होकर काल्पनिक हैं । या कौन कह सकता है कि ये स्थितियाँ और पात्र वास्तविक नहीं ? रेणु के विषय में उनकी पत्नी श्रीमती लतिका का ही नहीं, अन्य लोगों का भी कहना है कि वे कहानी उपन्यास में वास्तविक व्यक्तियों को ही, कहीं नाम बदलकर और कहीं बिना नाम बदले, कथाबद्ध करते थे ।[14] दूसरी ओर रेणु के जिन रिपोर्ताजों के विषय में साधारणत: यह माना जाता है कि वे सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं, उनके विषय में भी कुछ लोगों ने शंका उठाई है कि वे वास्तविक घटनाओं का 'आँखों देखा हाल' न होकर मात्र काल्पनिक रिपोर्टिंग है ।[15] उपरोक्त तीन कहानियों में यदि कथा में रिपोर्ताज का मिश्रण मिलता है तो 'एक अकहानी का सुपात्र' में कथा के साथ रेखाचित्र का मिश्रण मिलता है ।

'पुरानी कहानी : नया पाठ' में रेणु ने प्रभावोत्पादकता बढ़ाने के लिये कथा-शिल्प में रेडिया और फिल्म टेकनीक का भी समावेश किया है । बाढ़ के कारण बस्ती में पानी भर आया है । लोगों ने घरों की छतों पर आश्रय लिया

14- लतिका रेणु , 'अब वह मरीज़ कभी दरवाज़ा खटखटाने नहीं आयेगा' (रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित, पृ० 142)

15- ''लगभग दो साल पूर्व जब पटना की भयंकर बाढ़ पर रेणु की मर्मस्पर्शी रिपोर्ट 'आँखों देखा हाल' की तरह कई किस्तों में प्रकाशित हुई तो कुछ लोगों का कहना था कि उस बाढ़ के समय रेणु अपने गाँव औराही हिंगना में थे, पटना में नहीं ।''
– कुमार विमल का लेख 'रेणु की याद में' (मासिक 'नया प्रतीक' मार्च 1978 अंक , पृ० 3)

है । उनमें खलबली मची है । सभी अपनी जान बचाना चाहते हैं । कोई अभागा छप्पर पर अपने को न संभाल पाने के कारण नीचे पानी में गिर पड़ता है । लोग रो रहे हैं । विलाप कर रहे है । छप्पर पर जगह पाने के लिये एक दूसरे से झगड़ रहे हैं । बाढ़ के पानी में कभी किसी पशु की लाश बहकर आती है तो कभी कोई सांप नजर आता है । उधर कोसी की यह विनाश लीला देखकर निरुपाय असहाय लोग झांझ मृदंग बजाकर कोसी मैया का वंदना गीत गाते हैं और मृदंग की ताल पर ही गाँव के एक मात्र पढ़ुआ पागल जन कवि नागार्जुन की कविता की आवृत्ति कर रहा है, 'ताता थैया, ताता थैया, नाचो नाचो कोसी मैया''। ——— इस सारे हंगामे को मानो रेणु ने 'रिकार्ड' किया है और कहानी के निम्नलिखित अनुच्छेद में वे बिना कोई टीका टिप्पणी किए जैसे इसी रिकार्ड को फिर से बजाते हैं :-

''माय गे- ए - ए - ए — बाबा हो - ओ - ओ - दुहा - ई - ई - संभल के - ले - ले गिरा - गिरा — छप्पर पर चढ़ जा — ए सुगनी - रे . श्मललवा - आ - आ दीदी ई - ई — हाय - हाय ——— बाथें गे - बाबा हो-ओ-ओ ——— हे हसर महादेव — ले - ले - गया -गया — डूबा-डूबा ——— आँगन में छाती भर पानी ——— यह छप्पर कमजोर है, यहाँ नहीं — यहाँ जगह नहीं ——— हे हे ले ले गिरा ——— भैंस का बच्चा बहा रे-ए - ए — ए डोमन — ए डोमन - सांप-सांप ——— जै गौरा पारबती — रस्सी कहाँ है ——— हंसिया दे — बाप रे बाप ——— तान्ता थैया ताता - थैया , नाचो नाचो कोसी मैया — छन्म - कटम — - । ''16

इस अनुच्छेद में यदि सारे दृश्य को ध्वनिबद्ध किया गया है तो अगले अनुच्छेद में स्थिति से ध्वनि को पृथक करके उसका केवल चाक्षुष (विज्युअल) रूप प्रस्तुत किया गया है । देखिए :—

16- आदिम रात्रि की महक (राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली), पृ0 73-74

''भोर के मटमैले प्रकाश में ताड़ की फुनगी पर बैठे हुए वृद्ध गिद्ध ने देखा — दूर, बहुत दूर तक गेरुआ - पानी - पानी - पानी । बीच बीच में टापुओं जैसे गांव - घर, घरों और पेड़ों पर बैठे हुए लोग । वह वहाँ एक भैंस की लाश । डूबे हुए पाट और मकई के पौधों की फुनगियों के उस पार..... ।

राजगिद्ध पाँखे तौलता है — उड़ान भरता है । हहास ।''[17]

पूर्वगामी अनुच्छेद में जहाँ रेडियो टेक्नीक का उपयोग किया गया है वहाँ इस अनुच्छेद में पूरी तरह से फिल्म टेक्नीक का आभास मिलता है । सबसे पहले, मानो, ताड़ की फुनगी पर बैठे हुए गिद्ध का 'क्लोज अप' दिया गया है । फिर जैसे कैमरा 'जूम आउट' करता है और 'लांग शाट' में दूर - दूर तक फैला पानी ही पानी नजर आता है । (पानी शब्द की आवृत्ति विचारणीय है ।) इसके बाद मानो कैमरा 'जूम इन' करके धीरे-धीरे 'पैन' करता है और पानी के बीच टापुओं जैसे गाँव घर, घरों और पेड़ों पर बैठे हुए लोग, डूबे हुए पाट और मकई के पौधों की फुनगियाँ, उनके पार भैंस की लाश, एक के बाद एक नजर आते हैं । तब, जैसे, 'शाट' बदलता है । फिर उसी गिद्ध का 'क्लोज अप' । गिद्ध उड़ान भरता है और कैमरा जैसे उसे 'फालो' करता है । दृश्य - जगत् के प्रति रेणु की इस प्रकार की संवेदनशीलता देखते हुए नागार्जुन के एक अन्य संदर्भ में कहे गये ये शब्द बहुत ही सही मालूम होते हैं कि रेणु यदि ''कलकत्ता जैसे महानगर में पैदा हुआ होता और यदि वैसा ही सांस्कृतिक परिवेश, तकनीकी उपलब्धियों का वही माहौल इस विलक्षण व्यक्ति को हासिल हुआ होता तो अनूठी कथा-कृतियों के

17- वही, पृ0 74

रचयिता होने के साथ - साथ सत्यजित राय की तरह फिल्म निर्माण की दिशा में भी यह व्यक्ति अपना कीर्तिमान स्थापित कर दिखाता ।''[18]

जैसा कि ऊपर कहा गया है फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ मिश्रित शिल्प की कहानियाँ हैं । इनमें अन्य साहित्यिक विधाओं की शैलियों का ही नहीं, रेडियो और फिल्म टेकनीक का भी सहारा लिया गया है । परन्तु रेणु के इस मिश्रित शिल्प में जो बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण और ध्यानाकर्षक है, वह है कथा और गीत का मिश्रण । 'रसप्रिया', 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम', 'विघटन के क्षण' आदि कहानियों का प्रभाव कथा और गीत का मिला जुला प्रभाव है । कथा में गीत का समावेश करने के लिये रेणु को कहानी का परम्परागत ढाँचा तोड़ना पड़ा है । कथा वर्णन की प्रचलित लीक छोड़नी पड़ी है । 'तीसरी कसम' के हिरामन की तरह स्वयं रेणु को भी यह एहसास है कि प्रचलित लीक अर्थात् 'चालू रास्ते में कैसे गीत गा सकता है कोई ?''[19]

कहानियों का टेक्चर : बिम्ब नाद गंध :

कथा- शिल्प में संरचना या रूप गठन (स्ट्रक्चर) का ही नहीं, कहानी के शब्द - गठन (टेक्चर) का भी महत्व है । रेणु ने जहाँ बहुत से प्रसंगों और उपाख्यानों को जोड़कर कहानियों की संरचना खड़ी की है, वहाँ विविध प्रकार के बिम्बों, शब्द चित्रों, ध्वनिचित्रों, मिथकों आदि से उनका टेक्स्चर बुना है । अपनी कहानियों की सघन बुनावट में उन्होंने नाना प्रकार के रूप, रस, गंध, नाद, सुर, ताल, मुद्रा आदि का उपयोग किया है । उनकी प्रतिभा सबसे अधिक उनके द्वारा प्रयुक्त श्रव्य-बिम्बों या ध्वनि-चित्रों में झलकती है ।

18- नागार्जुन , 'फणीश्वरनाथ रेणु' (रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित) पृ0 19-20

19- ठुमरी, पृ0 120

रेणु की कहानियों के नाद-तत्व अर्थात् उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ ध्वन्य बिम्बों की परीक्षा, यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगी ।

'सिरपंचमी का सगुन' कहानी में कालू कमार अपने देनदार गृहस्थों का फाल गर्म करके हथौड़े से ''ठाँ-ठाँ-ठाँ -ठुन्न ठाँ ठुन्न ।'' करके पीटता है और फिर जब उसे कठौते में डालता है तो ''छूँ - छूँ - छूँ - ऊँ गुर्र- र्र ।'' की आवाज़ में गर्म फाल पानी में झनझना उठता है । कालू ने सिंघाय के जिस फाल को जानबूझ कर टेढ़ा किया था उसे गर्म करके रेलवे का जवान मिस्त्री अपने वजनदार हथौड़े से ''ठनांग - ठनांग -ठनांग'' करके सीधा करता है । इसी कहानी में आगे चलकर जवान मिस्त्री के ललकारने पर सिंघाय अपनी सारी हिम्मत बटोर कर हथौड़ा चलाता है तो उसके तीन वार ठीक और चौथा वार गलत पड़ता है —— ''ए - ठांय । ए - ठांय । ए ठांय । ए - ठर्र -क् । और जवान मिस्त्री के हाथ से सँड़सी-सहित लोहा छूटकर छिटक जाता है और दाहिना पैर बाल बाल बचता है । 'कस्बे की लड़की' कहानी में जब रिक्शा वाले उतराई में पैडिल चलाना बंद कर देते हैं तो बहुत देर तक 'फ्री ह्वील' की करकराहट होती रहती है —— 'ट्रिरि रि रि रि रि.... '' जिससे सरोज की सारी देह में गुदगुदी लगती है । 'हाथ का जस और पाक का सत्त' में कक्का गाड़ीवान के मुँह से सुनता है कि जग्गू पंसारी ने बुढ़ापे में एक जवान 'तड़ तड़' पछाहिन को घर में बैठा लिया है । 'तड़ तड़' का कोई अर्थ हो या न हो, इसकी ध्वनि से ही पछाहिन के मांसल और कसे हुए अंगों से फूटने वाली जवानी मूर्तिमान हो जाती है । रेणु ध्वनि ही नहीं, सुर के विषय में भी काफी संवेदनशील और सचेत हैं । 'हाथ का जस.... ' में ही कक्का कुसुमलाल गाड़ीवान से पूछता है कि क्या जग्गू पंसारी जिन्दा है तो रेणु के शब्दों में ''कुसुम लाल ने सुर खींच कर एक शब्द में जवाब दिया —— 'है - ए - ए - ए । जिसका अर्थ हुआ —

हाँ किसी तरह जी रहा है ।''[20] 'तबे एकला चलो रे' में भैंस बथान में पाड़े को न पाकर हुंकरती डिकरती उसे पुकारती है — 'पाड़ कहाँ आँ आँ ।'' और पलानी में बँधा पाड़ा जबाव देता है —''मैं यहाँ आँ आँ । 'एक आदिम रात्रि की महक' में करमा रेलवे के अनेक बाबुओं की नाक से सोते समय निकलने वाले सुर को इन शब्दों में याद करता है — ''.... बाबू की नाक ठीक बबुआनी आवाज में ही 'डाकती' है ।... पैटमान जी तो, लगता है, लकड़ी चीर रहे हैं ।.... गोपाल बाबू की नाक बीन जैसी बजती थी — सुर में । ।..... असगर बाबू का खर्राटा.... सिंघ जी फफकारते थे और साहू बाबू नींद में बोलते थे — 'ए, डाउन दो, गाड़ी छोड़ा.... ।'''[21]

रेणु की कहानियों में नाद के साथ - साथ गंध के प्रति भी अति-संवेदनशीलता लक्षित होती है । 'तीन बिंदियाँ' कहानी में गीताली को मिस्त्री हाराधन यन्त्रकार सलाह देता है — ''गीतों में गंध का परिवेशन कर सको, ऐसी साधना करो ।''[22] रेणु ने स्वयं ऐसी साधना की थी । वे अपने कथा-गीतों में गंध का समावेश करने में समर्थ हुए थे । वे प्रायः हर प्रकार की गंध के प्रति जागरूक हैं, चाहे वह पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरे भरे पौधों से निकलने वाली खास किस्म की गंध हो (रसप्रिया) अथवा बुझते हुए लोहे की 'लोहाइन' गंध (सिरपंचमी का सगुन) । बाघ के शरीर से निकलने वाली 'बघाइन' गंध या गाड़ी में रह-रहकर महक उठने वाले चम्पा के फूल की खुशबू हो (तीसरी कसम) । कस्बे की लड़की के शरीर में लगे सस्ते और चालू पाउडर तथा बालों में पड़े आयुर्वेदिक तेल की गंध (कस्बे की लड़की) अथवा

20- 'हाथ का जस... '(बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना, 1962), पृ0 121

21- 'आदिम रात्रि की महक', पृ0 43

22- ठुमरी, पृ0 170-71

नये मकान में चूने और वार्निश की गंध (एक आदिम रात्रि की महक) एक मुस्लिम परिवार में भुने हुए प्याज की बू (जलवा) या हवा में नववधुओं की सुखली - लहराती लाल, गुलाबी, पीली चुनरियों की मादक गंध (पुरानी कहानी : नया पाठ) । महानारायण तेल मालिश की उबकाई लाने वाली गंध (कालू चरित) अथवा जिल्दसाजी की दुकान में लेई की गंध जिससे दिमाग फट जाता है (आज़ाद परिन्दे) । कई दिन बंद पड़े कमरे से निकलने वाली 'गुमी हुई' गंध या पीतल की चमचमाती हुई थाली में भात डालते समय भाप की महक (आत्म - साक्षी) । कहीं कहीं तो रेणु की यह गंध - चेतना बहुत ही सूक्ष्म रूप में हमारे सामने आती है । 'एक आदिम रात्रि की महक' का करमा — जिसे जन्म के कुछ घण्टे बाद ही मालगाड़ी के डिब्बे में 'बिना बिल्टी रसीद' के 'लावारिस माल' के रूप में पाया गया था, जिसकी जवानी रेल गाड़ियों में रलीफिया बाबुओं के साथ भटकते बीती है — जब अपने बे सहारा भटकते जीवन से कुछ क्षण चुराकर स्टेशन के पास के एक गाँव में प्रवेश करता है तो 'गाँव की पहली गंध का पहला झोंका' उसके लिये एक अभूतपूर्व अनुभूति बन जाता है । 'संवदिया' कहानी का हरगोबिन संवदिया अपने कार्य में इतना दक्ष है कि वह वातावरण को सूँघकर ही संवाद का अन्दाजा लगाता है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि रेणु का कथा - जगत नाना ध्वनियों, सुरों, गीतों से निनादित ही नहीं, भाँति - भाँति की गंधों से महकता भी है । वास्तव में रेणु ने अपनी कथा स्थितियों को बहु आयामी मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया है । उसके लिये उन्होंने यथा सम्भव सभी कलाओं के समस्त उपकरणों तथा ऐन्द्रिय -बोध के विविध स्रोतों का सहारा लिया है । नाद, सुर, गंध ही नहीं, उन्होंने जैसे अभिनय कला से भी मुद्राएं और कण्ठता (माड्यूलेशन आफ वाइस) लेकर अपनी कहानियों का टेक्चर बुना है । वे पात्रों की भंगिमाओं और मुख मुद्रा का सूक्ष्म विवरण देते हैं । 'तीर्थोदक' कहानी में : ''विष्णु की बोली, भंजन के झाग से

भरे हुए मुँह में गुड़गुड़ाई । मुँह ऊँचा करके उसने कहा — मैं - हन्-हन्-वा । फिर ओसारे के बगल में झाग उगलकर बोला — दूसरे से कर्ज लेकर तुम्हारी चीज ला दी है । रूपया देती जाओ । आज ही मनीआर्डर से भेज दूँगा । दूसरे का रूपया.... ''[23] इसी कहानी का एक और पात्र खैहड़ ओझा जानता है कि कौन सी मुखमुद्रा शिष्टाचार हेतु कहे गये उसकी बात को रद्द करके उसके अभीष्ट अर्थ का संकेत दे सकती है । पण्डाइन चाहती है कि यात्रियों में जितनी स्त्रियाँ है, वे ऊपर बारण्डे पर आयें । खैहड ज़ाहिरी तौर पर उसकी बात का समर्थन करते हुए भी दाँत निपोरकर लल्लू की माँ को पण्डाइन की चालाकी के प्रति सावधान करता है । देखिए यह प्रसंग : —— ''खैहड़ ने लल्लू की माँ की ओर दाँत निपोरकर देखते हुए, धीरे से कहा — जैसी मर्जी आप लोगों की । सबके साथ नीचे रहिए, यह भी अच्छा । चाहे, नवौजनि ऊपर जाइए, यह भी अच्छा ।

दिन का समय होता तो आँख की कनखी से लल्लू की माँ को सचेत कर देता — ऊपर नहीं । किन्तु रात को धुआँकस लालटेन की रोशनी में वह दाँत निपोटने के सिवा और क्या करे ?''[24]

'ठेस' कहानी में ग्राम - शिल्पी सिरचन जब अपने काम में मगन होता है, तो एक कुशल अभिनेता की तरह ही 'उसकी जीभ ज़रा बाहर निकल आती है, होंठ पर ।'[25] 'सिरपंचमी का सगुन' में बूढ़े मिस्त्री की दिलचस्पी केवल दूधवाली, अर्थात् माधव की माँ में थी । लेकिन एक दिन जब माधव की माँ के बदले माधव का बाप आ टपकता है तो बूढ़े मिस्त्री का अचका जाना स्वाभाविक लगता है । वह अभिनय कला में प्रवीण व्यक्ति की तरह ही केवल स्वर परिवर्तन से अपना मनोभाव प्रकट करता है और अप्रत्याशित आघात को 'स्टैबलिश' करता है । देखिए : —

23- ठुमरी, पृ0 26
24- वही, पृ0 37
25- वही, पृ0 54

''राम - राम मिस्त्री जी । मैं माधवे का बाप हूँ ।

राम - रा... । माधो का बाप । बूढ़े मिस्त्री ने सिधाय को गौर से देखते हुए कहा —'जवान मिस्त्री ने कहा — दूधवाली का घरवाला ?

— ओ - ओ । दूधवाली का घरवाला, टेढ़े पाल वाला ?

बूढ़े मिस्त्री ने गा गा कर कहा — बैठो - बैठो, क्या नाम है तुम्हारा ?''[26]

'उच्चाटन' कहानी में बिलसवा या रामबिलास 'ड्रामा' और एक्टिंग' के 'जार्गन' में ही बोलता - सोचता है । दो साल के बाद घर लौटने पर उसने मन में निश्चय किया था कि वह साहूकार बूढ़े मिसर को खरी - खरी सुनाएगा । किन्तु सुबह - सुबह ही मिसर की आवाज सुनकर उसका निश्चय उगमगा जाता है । बिलसवा '' ड्रामा में परदा उठने पर अचानक पार्ट भूल गया, मानो ।''[27] आखिर वह साहस बटोर कर मिसर से दो एक तेज़ बातें कह ही डालता है । उसका अनुमान था कि उसकी तेज बात सुनकर मिसर की क्रोधाग्नि भड़क उठेगी । किन्तु ऐसा नहीं होता । मिसर उल्टा नरम पड़ जाता है । बिलसवा को लगता है कि ''मिसर 'पाट' छोड़कर बेपाट' की बात बतियाने लगा ।''[28] फिर उसे एक पुराना प्रसंग याद आता है —''...पिछले साल, महेन्द्रपुर - मोहल्ला दुर्गापूजा के 'ड्रामा' में जुगल महतो पनवाड़ी ने ऐसी तरह खेला चौपट किया था । जल्लाद का 'पाट' लेकर उतरा और तलवार उठाकर मारते समय रटा हुआ 'पाट' ही भूल गया और बे पाट की बात बोलते-बोलते तलवार फेंककर रोने लगा ।.... मिसर भी रोता है क्या ? नहीं, नाक पोंछ रहा है । ''[29]

26- वही, पृ0 97

27- आदिम रात्रि की महक, पृ0 92

28- वही, पृ0 95

29- वही

इस सारी चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रेणु की कहानियाँ 'शुद्ध' नहीं, मिश्रित शिल्प की कहानियाँ है । इनमें अन्य साहित्यिक विधाओं यथा रेखाचित्र, रिपोर्ताज, गीत आदि का ही मिश्रण नहीं, साहित्येतर कलाओं जैसे फिल्म, रेडियो, संगीत, अभिनय आदि की टेकनीक का भी समावेश मिलता है । इस दृष्टि से रेणु संसार के उन महान साहित्य - शिल्पियों में से एक है जिन्होंने, टीसिंग के शब्दों में , अपनी कला की सीमाओं का अतिक्रमण करके उसकी अन्य कलाओं के साथ सहजीविता की आवश्यकता अनुभव की है ।[30]

मिथक और मोटीफ :

'मिथक' अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द के आधार पर बताया गया एक पारिभाषिक शब्द है जिसका प्रयोग कई अर्थों में होता है । अरस्तु ने अपने काव्य शास्त्र (पोयटिक्स) में 'मिथ' का प्रयोग कथानक या कथात्मक संरचना के लिए किया है और 'लोगोस' (ज्ञान) का व्यवहार इसके विलोम या प्रति बिन्दु के रूप में किया है । मिथ का संबंध कथन या वर्णन से है, चिन्तन या दर्शन से नहीं । इसकी विशेषता इसकी तर्कहीनता और अनायासता में निहित है जो इसे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र से पृथक करती है । आधुनिक साहित्य समीक्षा में भी 'मिथक' शब्द का प्रचलन पर्याप्त मात्रा में लक्षित होता है और यह धर्म, लोक-वार्ता, नृविज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण, ललितकला आदि की साझेदारी में एक व्यापक अर्थक्षेत्र की ओर संकेत करता है ।[31] सत्रहवीं और अठारहवीं

30- "Great artists in the field of literature also feel a need for going beyond the limits of their art and striving after a symbiosis with the other art."
-H.P.H. Teesing, 'Literature and the Other Arts : Some Remarks', cited by Steven Paul Scher in 'Notes Towards a Theory of verbal Music', (Comparative Literature, published by the University of Oregon, Eugene, Oregon, Vol. xxii, Number 2, Spring,1970) Page 147.

31- Rene Wellek and Austin Warren, 'Theory of Literature', (Peregrine Books,1976) Page 190

शती में 'मिथक' से बुरे अर्थ का ही द्योतन होता था — एक अवैतिहासिक और अवैज्ञानिक कल्पित कथा, एक मिथ्या आख्यान । किन्तु अब इस शब्द के विषय में यह धारणा बदल गयी है । आज मिथक को काव्य की ही भाँति वैज्ञानिक और ऐतिहासिक सत्य का प्रतिद्वंद्वी नहीं, उसका पूरक माना जाता है ।[32]

आधुनिक काल में प्रतिरूपात्मक और तर्क संगत कथा संसार को रचने वाले लेखक भी इन मिथकों या लोक कथाओं का उपयोग अपनी कृतियों की संरचना और शब्द रचना दोनों में करते हैं । कहीं ये मिथक लेखक को एक बना बनाया पैटर्न उपलब्ध करते हैं और वह अपनी रचना शक्ति का प्रयोग इस पैटर्न को विस्तृत चित्रांकन द्वारा उभारने में ही करता है । कहीं ये मिथक वर्तमान स्थितियों को उनके आद्य-प्ररूपों (आर्किटाइप) से जोड़ते हैं और कहीं किसी खंडगत अनुभव को एक व्यापक अनुभव का अंग बनाते हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी कहानियों का कथ्य ही नहीं, कथ्य की अभिव्यक्ति के उपकरण भी लोक जीवन से लिये हैं । कथ्य की सशक्त और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने कहानियों में लोक कथाओं और मिथकों का भी उपयोग किया है । रेणु के कथा लोक और इस वास्तविक लोक के मध्य संबंध मूलतः, राबर्ट शोल्ज़ और राबर्ट केलाग के शब्दों में समाज शास्त्रीय प्रतिरूपात्मक (Sociological representational) है ।[33] अर्थात् उन्होंने इस लोक की ही यथार्थ स्थितियों को उनके सामाजिक परिवेश में रूपायित करने का प्रयत्न किया है । ऐसी कथा कृतियाँ अपनी प्रभावपूर्णता और नाटकीयता के बावजूद कभी - कभी एकायामी और सतही लगती हैं । कदाचित इसी खतरे से

32- वही, पृ० 191

33- Robert Scholes and Robert Kellogg,'The Nature of Narrative', (Oxford University Press,1966)Page 98.

बचने के लिये रेणु ने 'दैनिक जीवन के रोचक प्रसंगों' में लोक कथाओं और मिथकों का समावेश किया है और इन्हें गहराई और व्यापकता देने की कोशिश की है ।

'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम' हिरामन और हीराबाई के परस्पर आकर्षण और अलग होने की नियति की कहानी है । महुआ घटवारिन की अन्तर्कथा इनकी इस नियति को प्रतीकात्मक ढंग से रेखांकित करती है । कहानी के दोनों पात्र, हिरामन और हीराबाई इस मिथक के दर्द को अपने भीतर अनुभव करते हैं । 'महुआ घटवारिन' गाते - गाते हिरामन भावुक हो उठता है — ''उसको लगता है, वह खुद सौदागर का नौकर है । महुआ और कोई बात नहीं सुनती । परतीत करती नहीं । उलटकर देखती भी नहीं । और वह थक गया है तैरते - तैरते ।....

इस बार लगता है महुआ ने अपने को पकड़ा दिया । खुद ही पकड़ में आ गई है । उसने महुआ को छू लिया है, पा लिया है, उसकी थकन दूर हो गई है । पन्द्रह - बीस साल तक उमड़ी हुई नदी की उलटी धारा में तैरते हुए उसके मन को किनारा मिल गया है । आनन्द के आँसू कोई रोक नहीं मानते ।.... ''[34]

किन्तु यह हिरामन का भ्रम है, उसका दिवा- स्वप्न है । हीराबाई के रूप में अवतरित महुआ घटवारिन उसकी पकड़ में नहीं आती । कम्पनी की औरत कम्पनी में चली जाती है मगर जाते समय भरे गले से हिरामन से कहती है — ''तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है । क्यों मीता ?.... . महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरुजी ।''[35] महुआ घटवारिन की कथा का दर्द आकर्षण में बँधे दो व्यक्तियों का ही दर्द नहीं, उसका

34- ठुमरी, पृ० 122-23

35- वही, पृ० 139

एक सामाजिक संदर्भ भी है । सौदागर पूंजीवादी व्यवस्था के एक मात्र मूल्य उस धन का प्रतीक है जिसने प्रेम, सौंदर्य, भावना, त्याग, बलिदान आदि जीवन मूल्यों को रद्द किया है ।

कहानी में हिरामन द्वारा अपनी विशिष्ट शैली में वर्णित नामलगर ड्योढ़ी का वृत्तान्त भी एक मिथक है । नामलगर ड्योढ़ी के राजा के घर देवता ने जन्म लिया था, जिसे किसी ने नहीं पहचाना । देवता आखिर देवता है । एक बार लाट साहब मय लाटनी के हवागाड़ी से आये । लाट ने भी नहीं, पहचाना आखिर लाटनी ने । लेकिन फिर भी सभी ने बात हँसी में उड़ा दी । तब देवता का खेल शुरू हुआ । पहले दोनों दन्तार हाथी मरे, फिर घोड़ा, फिर 'पटपटांग'.... अर्थात् धन दौलत, माल मवेशी सब साफ.....

यह उटपटांग किस्सा सुनाते समय हिरामन की मनोदशा के वर्णन से इस मिथक के अर्थ का आभास सहज ही मिलता है :- '' हिरामन का मन पल पल में बदल रहा है । मन में सतरंगा छाता धीरे - धीरे खिल रहा है, उसको लगता है ।... उसकी गाड़ी में देवकुल की औरत सवार है । देवता आखिर देवता है ।''[36]

कहानी के अन्त में देवकुल की यह औरत, अर्थात् हीराबाई उसे छोड़कर चली जाती है तो उसके मन की सारी दौलत, सारा सुख चैन अपने साथ ले जाती है ।

रेणु की कहानियों में हमें समाज में प्रचलित विख्यात और अविख्यात दोनों प्रकार के मिथक मिलते हैं । 'पुरानी कहानी : नया पाठ' में बाढ़ के रूप में ''मुँह बाये, विशाल मगरमच्छ की पीठ पर सवार दस-भुजा कोसीका नाचती, खिलखिलती, अट्टहास करती आगे बढ़ रही है ।''[37] 'मैना जोगिन'

36- वही, पृ० 114

37- आदिम रात्रि की महक, पृ० 73

में रतनी का नैना जोगिन के रूप में नामकरण भी एक मिथक के आधार पर ही हुआ है —— ''देहात में झाड़-फूंक करने वाले ओझा गुणियों के हर 'मंतर' के अन्तिम आखर में बंधन लगाते हुए कहा जाता है — दुहाए हस्सर महादेव गौरा पारवती, नैना जोगिन.... इत्यादि । लगता है कोई नैना जोगिन नाम की भैरवी ने इन मंत्रों को सिद्ध किया था ।''[38] सचमुच रतनी की गालियाँ किसी भैरवी द्वारा सिद्ध किए गये मंत्रों से कम पैनी या मारक नहीं हैं ।

रेणु के उपन्यासों - कहानियों में अनेक गाँवों या घाटों के नाम किसी न किसी नये पुराने मिथक के साथ जुड़े होते है । 'हाथ का जस और वाकू का सत्त' में भी पीलिया रोग और उसका इलाज करने वाले बैद के कारण ही नव टोली गाँव का नाम हल्दिया गाँव पड़ा —— '' नव टोली गाँव का नाम ही बदल गया । गाँव का नाम मशहूर हुआ'- हल्दिया । अर्थात् — जहाँ हल्दिया यानी पिथरी जैसे भीषण रोग को चुटकी बजाकर उड़ा देने वाला बैद आया है । हल्दिया बैद । हल्दिया गाँव ।''[39]

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में मिलने वाले मिथकों के साथ-साथ उनके 'मोटीफ' (अभिप्राय) का अध्ययन भी उन्हें समझने में सहायक हो सकता है । किसी कृतिकार अथवा कृतिकार की अनेक कृतियों का प्रमुख या आवर्तक भाव अथवा विषय ही 'मोटीफ' कहलाता है । रेणु की कहानियों में कुछ बिम्ब, दृश्य, प्रसंग या विषय बार-बार आते है, जैसे मेला, नाच, रेल, रेल यात्रा आदि । मेला फणीश्वरनाथ रेणु का एक प्रिय मोटीफ है । उन्होंने अधिकतर ग्रामीण जीवन की कहानियाँ लिखी है और मेला ग्रामीण समाज की एक महत्वपूर्ण संस्था या प्रथा है । मेला एक संस्था ही नहीं, यह अस्थिर और परिवर्तनशील जीवन की

38- वही, पृ० 175

39- हाथ का जस, पृ० 125

की गहमागहमी और रंगीनी का भी प्रतीक है । 'तीसरी कसम' में हिरामन और हीराबाई का मिलन मेले में ही होता है और हीराबाई के चले जाने के बाद ही यह मेला, वाच्यार्थ और प्रतीकार्थ दोनों दृष्टियों से, टूटता है । 'रसप्रिया' में रमपतिया के साथ विश्वासघात करने के काफी समय बाद पंचकौड़ी मिरदंगिया की उस अबला के साथ गुलाब बाग मेले में अचानक मुलाकात हो जाती है । पर मेला हर साल लगता है, गया समय बार - बार नहीं लौटता है । पंचकौड़ी निरुपाय और जिन्दगी के मेले में अकेला रहने के लिये विवश है । 'लाल पान की बेगम' में बिरजू की माँ के पल-पल बदलते और परस्पर विरोधी मनोभावों के मूल में बलरामपुर मेले का नाच ही है ।

रेणु की कहानियों में रेल और रेल यात्रा का मोटीफ भी मिलता है । यात्रा जीवन की निश्चलता और लक्ष्यहीनता में गति और लक्ष्य का आभास देती है । रेणु के अनेक पात्रों के मन में रेल गाड़ी में बैठकर तीर्थ यात्रा की चाह बड़ी बलवती नजर आती है । 'तीर्थोदक' में लल्लू की माँ पति- पुत्रों, घर - गृहस्थी का नेह छोड़कर इसी यात्रा के लिये रवाना हो जाती है । 'तीसरी कसम' के चालीस साल के हट्टे कट्टे देहाती गाड़ीवान ने अपने मन से सभी इच्छाओं को, यहाँ तक कि शादी ब्याह की इच्छा को भी बलपूर्वक बाहर निकाल फेंका है । परन्तु इस यात्रा की इच्छा को वह निकाल नहीं सका है । हीराबाई के चले जाने पर जब उसके लिये सारा संसार सूना हो जाता है तो यही एक इच्छा उसके जीने का अवलम्ब बनती है —— '' रेलवे लाइन की बगल से बैलगाड़ी की कच्ची सड़क गई है दूर तक । हिरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है । उसके मन में फिर पुरानी लालसा झाँकी, रेलगाड़ी पर सवार होकर, गीत गाते हुए जगन्नाथ धाम जाने की लालसा.... ''[40] 'ना जाने के हि वेष में' की सारी कथा रेलगाड़ी में ही घटती है और एक रेलयात्री के वेष में ही वक्ता को भैरव सिंह 'भैरा' जैसे अद्भुत साहित्य सेवी के दर्शन होते है ।

40- ठुमरी, पृ० 140

रेलगाड़ी, रेलवे स्टेशन और रेलवे कर्मचारियों का ज़िक्र रेणु की कहानियों में बार - बार मिलता है । 'एक आदिम रात्रि की महक' का कमा, जिसे जन्म से कुछ घण्टे बाद ही माल गाड़ी के डिब्बे में बिना 'बिल्टी-रसीद' के 'लावारिस माल' के रूप में पाया गया था, जो रेलवे के रिलीफिया बाबुओं के साथ एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक भटकते भटकते तीन आ गया है, कहानी के अन्त में चलती गाड़ी से कूदकर जीवन में कहीं जम जाना चाहता है । यहाँ रेलगाड़ी किसी लक्ष्य का नहीं, जीवन की लक्ष्यहीनता और भटकन का प्रतीक बन जाती है । रेणु की कहानियों में रेल उस औद्योगिक व्यवस्था का भी प्रतीक है जो देहात की सामन्ती समाज- व्यवस्था को धीरे - धीरे स्थानापन्न कर रही है । 'सिरपंचमी का सगुन' में गाँव के लुहार कालू कमार द्वारा टेढ़े किए गये फाल को रेलवे का मिस्त्री एक दो चोटों से ही सीधा करके प्रचलित लोकोक्ति के स्थान पर एक नयी उक्ति 'सौ चोट लुहार की तो एक चोट सरकार की' की सार्थकता को रेखांकित करता है ।

रेणु की कहानियों में एक सुकुमार, सुदर्शना, सुशीला नारी का भी मोटीफ मिलता है जो कहीं 'तीर्थोदक' की अन्नपूर्णा, कहीं 'ठेस' की मानू, कहीं 'विघटन के क्षण' की विजया की , तो कहीं 'संवदिया' की बड़ी बहू के रूप में पाठकों के सामने बार - बार आती है । 'जलवा' की फातिमा तथा 'तीसरी कसम' की हीराबाई भी ऐसी ही नारियाँ है । रेणु की कहानियों में बार - बार आने वाली यह नारी शरत् की नारी की प्रतिमूर्ति है जो स्वयं बहुत कुछ सहने के बावजूद दूसरों को प्यार और ममता बाँटती है । दूसरी ओर एक अकेला अभागा पुरुष भी रेणु का प्रिय मोटिफ है जो कहीं 'रसप्रिया' के पंचकोड़ी मिरदंगिया, कहीं 'ठेस' के 'सिरचन', कहीं 'तीसरी कसम' के हिरामन तो कहीं 'एक आदिम रात्रि की महक' के कामा के रूप में हमारे सामने आता है । इन त्यागमयी ममतामयी नारियों तथा अकेले अभागे पुरुषों के

योग से रेणु ने कुछ ऐसी कथास्थितियों की सृष्टि की है जिनके कारण कहीं-कहीं उनकी यथार्थवादी दृष्टि रोमानियत के कुहासे से धुंधली हुई लगती है ।

खेतों में चरते अथवा तारों पर चहचहाते पक्षियों का चित्रण रेणु प्रायः बहुत ही आत्मीयता और लगाव के साथ करते हैं और उनकी चहक में जीवन की छोटी छोटी खुशियों की अनुगूंज अनुभव करते हैं । परन्तु उनकी कहानियों में चील सदा ही एक अनिष्ट सूचक मोटीफ के रूप में आती है । 'रसप्रिया' में जब पंचकोड़ी मिरदंगिया इस बात का मातम मनाता है कि ''अब तो दोपहरी नीरस करती है, मानो किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है'' तो उसी समय ''आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिहँकारी भरी – टिं... ईं टि ह क... '' कहानी के एक अन्य स्थल पर मोहना जब पंचकोड़ी को पागल समझकर भाग खड़ा होता है तो ''आसमान में उड़ती हुई चील ने फिर टिहँकारी भरी... टिं हीं... ईं... टिं. टिं -ग ।'' 'विघटन के क्षण' कहानी में गाँव उजड़ रहा है । सभी गाँव छोड़कर शहर में जा बसना चाहते हैं और यही चील इस विघटनकारी शक्ति की प्रतीक बनकर आती है..... '' अचानक एक चील ने डैना फड़फड़ाया । सभी चिरैयाँ एक साथ भड़क कर उड़ी ।'' यही चील 'एक आदिम रात्रि की महक' में अकेले करमा को पुकारती जाती है ।

दृष्टि बिन्दु :

दृष्टि बिन्दु की समस्या कथा शिल्प की बुनियादी समस्या है । वक्ता और कथा के मध्य संबंध ही वह आधार - शिला है जिस पर कथा की सारी संरचना खड़ी होती है । पर्सी लूबाक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि क्राफ्ट आफ फिक्शन' में दृष्टिबिन्दु की समस्या को कथा शिल्प की केन्द्रीय समस्या मानकर इसकी विशद चर्चा की है । वक्ता कथा का वर्णन उसके बाहर या भीतर रहकर कर सकता है । और इन दोनों स्थितियों में वह अनेक प्रकार का दृष्टि

बिन्दु अपनाकर अनेक कोणों से कथा को 'देख' सकता है । कथा वर्णन की सर्वाधिक प्रचलित और परम्परागत परिपाटी वह है जब लेखक सर्वज्ञ सर्वव्यापी अन्य - पुरुष का दृष्टि बिन्दु अपनाता है । ऐसी स्थिति में प्रायः लेखक स्वयं वक्ता होता है । वह न केवल पात्रों के बाहरी क्रिया- कलापों का, वरन् उनकी भीतरी आकांक्षाओं और उनके व्यवहार को परिचालित करने वाले गूढ़ प्रयोजनों का भी ज्ञाता होता है, तथा पाठकों को भी अपने इस ज्ञान का सहभागी बनाने को तत्पर होता है । कहीं वक्ता स्वयं कथा के बाहर रहकर भी किसी एक पात्र का दृष्टिबिन्दु अपनाता है । वह सारी कथा को केवल उसी पात्र की आँखों से देखता है और जिन क्षेत्रों में उस पात्र की पहुँच नहीं होती है वहाँ वक्ता की भी पैठ नहीं होती है । कहीं कोई एक पात्र ही वक्ता बनकर उत्तम पुरुष के दृष्टि बिन्दु से कथा का वर्णन कहानी के भीतर से ही करता है । यह उत्तम पुरुष वक्ता या कहानी का ''मैं'' विश्वसनीय भी हो सकता है और अविश्वसनीय भी । दृष्टिबिन्दु के निर्वाह की ओर भी बहुत सी प्रविधियाँ हैं जिनका प्रयोग असंख्य कथाकारों ने अपनी असंख्य कृतियों में किया है । पर्सी लुबाक का आग्रह है कि कथाकृति में दृष्टि बिन्दु के सिद्धान्त का निर्वाह कट्टरता से होना चाहिए । कथाकार कोई भी दृष्टि बिन्दु अपना सकता है परन्तु पूरी कृति में उसी का समानरूप से निर्वाह होना चाहिए । किन्तु, जैसा कि ई०एम० फास्टर का मत है, डिकेन्स और टालस्टाय जैसे महान लेखकों ने दृष्टि बिन्दु की बदली (शिफ्ट) से या उपरोक्त प्रविधियों में से अनेक के मिश्रण से अपनी कृतियों को अधिक रोचकता और गहराई प्रदान की है ।[41]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, एक सर्वज्ञ सर्वव्यापी अन्य पुरुष के दृष्टि बिन्दु से कथा वर्णन, कहानी कहने की परम्परागत और एक प्रकार से स्वाभाविक पद्धति है । रेणु ने अधिकांश कहानियों में मोटे तौर पर इसी

41- E.M. Forster, 'Aspects of the Novel', Page 186

पद्धति को अपनाया है । 'रस प्रिया', 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम', 'लाल पान की बेगम', 'कबे की लड़की', 'टेबुल', 'एक आदिम रात्रि की महक' आदि कहानियों का वक्ता कथा के बाहर से ही उसका वर्णन करता है । दूसरी ओर लेखक की कई कहानियों में कोई पात्र ही वक्ता बनकर तथा उत्तम पुरुष का दृष्टि बिन्दु अपनाकर कथा के भीतर से ही कथा का वर्णन करता है । 'तबे एकला चलो रे', 'जलवा', 'अतिथि सत्कार', 'ना जाने के ए वेष में', 'अगिनखोर', 'रेखाएँ : वृत्त चक्र' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं । अन्य पुरुष का दृष्टि बिन्दु कथाकार को बहुत सारे बंधनों से मुक्त करता है और वह पात्रों और कथा स्थिति के बारे में कुछ भी कह सकता है । वह पात्रों के व्यवहार का ही नहीं उनके मनोभावों का भी वर्णन कर सकता है तथा उन पर अपनी ओर से टीका टिप्पणी भी कर सकता है । दूसरी ओर उत्तम पुरुष की दृष्टि बिन्दु लेखक पर अंकुश रख कर उसके युक्ति चालन को सीमित कर देता है, फिर भी यह पद्धति कथा की नाटकीयता और वस्तुपरकता में वृद्धि करती है । दृष्टि बिन्दु के निर्वाह की और भी बहुत सी पद्धतियाँ हैं और प्रत्येक की अपनी सम्भावनाएँ और सीमाएँ है । रेणु ने इन विभिन्न पद्धतियों की सम्भावनाओं का एक साथ उपयोग करने के हेतु कहीं कहीं एक ही कहानी में दृष्टि बिन्दु को अनेक बार बदला है और कथा वर्णन की अनेक प्रविधियों को आपस में मिलाया है । इस दृष्टि से रेणु की कुछ कहानियों का अध्ययन उपयोगी हो सकता है ।

'ठेस' कहानी का आरंभिक अनुच्छेद एक सर्वज्ञ अन्य पुरुष वक्ता के दृष्टि बिन्दु से लिखा गया लगता है । हम जान जाते हैं कि खेती बारी के समय गाँव के किसान सिरचन को बेकार ही नहीं, बेगार समझते हैं । दूसरे अनुच्छेद में यह सर्वज्ञ वक्ता सिरचन के साथ एकाकार हो जाता है और एक अंतरज्ञ वक्ता बनकर उसी की आँखों से सारी स्थिति को देखता है –''...आज सिरचन को मुफ्तखोर, कामचोर या चटोर कह ले कोई । एक समय था, जबकि

उसकी मड़ैया के पास बड़े-बड़े बाबू लोगों की सवारियाँ बँधी रहती थीं। उसे लोग पूछते ही नहीं थे, उसकी खुशामद भी करते थे।.... अरे, सिरचन भाई। अब तो तुम्हारे ही हाथ में यह कारीगरी रह गई है सारे इलाके में। ..... ''[42] इत्यादि इत्यादि। तीसरे अनुच्छेद में पाठक को फिर एक झटका लगता है। वह जान जाता है कि कथा का वास्तविक वक्ता कोई सर्वज्ञ या अल्पज्ञ अन्य पुरुष न होकर, कहानी का ही एक पात्र, मानूका भाई है जो उत्तम पुरुष के दृष्टि बिन्दु से कथा कहता है —— ''मुझे याद है... मेरी माँ जब कभी सिरचन को बुलाने के लिये कहती, मैं पहले ही पूछ लेता — भोग क्या क्या लगेगा ?''[43]

'विघटन के क्षण' में सामान्यतः सर्वज्ञ अन्य पुरुष का दृष्टि बिन्दु अपनाया गया है परन्तु बीच - बीच में चुटमुनियाँ के सीमित दृष्टि बिन्दु के सहारे स्थिति के दर्द को गहरा बताने का प्रयत्न किया गया है।[44] 'एक आदिम रात्रि की महक' में अल्पज्ञ अन्य पुरुष के सीमित दृष्टि बिन्दु को अपनाया गया है। वक्ता यद्यपि कथा को बाहर से ही उसका वर्णन करता है फिर भी वह सारी स्थिति को कामा की आँखों से ही देखता है। कामा जो कुछ भी करता है, जो कुछ भी सोचता है, या जिन परिस्थितियों से गुजरता है, उनके अतिरिक्त पाठक कोई अन्य बात नहीं जान पाता है। 'तीसरी कसम' में भी अन्य पुरुष वक्ता हिरामन के साथ एकाकार होकर एक सीमित दृष्टि बिन्दु से कथा का वर्णन करता है। किन्तु 'एक आदिम रात्रि की महक' के प्रतिकूल यहाँ समूची कथा में उसी दृष्टि बिन्दु का निर्वाह समानरूप से नहीं होता है। कहीं वक्ता हिरामन से निःसंग होकर उसके बारे में वस्तुपरक विवरण देता है —''चालीस

42- ठुमरी, पृ० 5।

43- वही

44- आदिम रात्रि की महक, पृ० 16

साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा, देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता ।''[45] कहीं वक्ता हिरामन के साथियों के भीतर झाँक कर उनकी मानसिकता और गुढ़ाशयों का वर्णन करता है — ''क्या जवाब दे पलटदास । हिरामन ने उसको चेतावनी दे दी थी, गपशप होशियारी से करना । वह चुपचाप गाड़ी की आसनी पर जाकर बैठ गया, हिरामन की जगह पर ।''[46] इत्यादि । 'उच्चाटन' में इसी प्रकार अन्य पुरुष वक्ता अधिकतर बिलसवा के सीमित दृष्टि बिन्दु को अपनाता है परन्तु कहीं - कहीं उस पात्र से निःसंग होकर भी कथा का वर्णन करता है ।

'प्रजा सत्ता' में रेणु ने दृष्टि बिन्दु की एक अलग ही पद्धति को अपनाया है । वक्ता कहानी का एक पात्र है जो उत्तम पुरुष में कथा का वर्णन करता है । परन्तु यह वक्ता विश्वसनीय नहीं है । कहानी के आरंभ में वह अपने और दूसरों के विषय में जो कुछ कहता है उसी पर विश्वास करने से कहानी के अर्थग्रहण में बाधा उत्पन्न हो सकती है । यह पात्र कायर और उत्पीड़न ग्रंथासक्ति से ग्रस्त है । अपने वर्णन में यह पात्र जिन कथा प्रयोजनों की ओर संकेत करता है, वे लेखक के अभिप्रेत प्रयोजनों से भिन्न हैं । दृष्टि बिन्दु की इस जटिल पद्धति से कहानी में निराली कलात्मकता दृष्टिगोचर होती है ।

रेणु पात्रों के भावों या उनकी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने के लिये प्रायः उद्धरण चिह्नों का प्रयोग नहीं करते हैं । यह बात भी कथा लेखन में शास्त्रीयता और शुद्धता के समर्थकों को परेशानी में डालती है । वास्तव में ये प्रतिक्रियाएं विभिन्न पात्रों के कथनों या मतों को प्रकट करने की अपेक्षा उनके दृष्टि बिन्दु को स्पष्ट करती है । एक ही कहानी में विभिन्न दृष्टि बिन्दुओं या

45- ठुमरी, पृ० 111

46- वही, पृ० 127

कथा वर्णन की अनेक पद्धतियों का एक साथ उपयोग करने से फणीश्वरनाथ रेणु ने कथा स्थिति को उसकी पूर्णता में प्रस्तुत करने की कोशिश की है ।

भाषा :

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा शिल्प पर उनकी भाषा की परीक्षा के बिना पूरी तरह विचार नहीं हो सकता है । भाषा शिल्प या अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण तत्व है ; हालांकि भाषा का प्रश्न शिल्प तक ही सीमित न होकर लेखक की दृष्टि से भी जुड़ा हुआ है । अपने कथ्य की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये सही भाषा की तलाश प्रत्येक सृजनशील लेखक को करनी पड़ती है । रेणु ने इस सही भाषा की तलाश किन्हीं शब्द-कोशों, धुंधले कल्पना-लोकों या उपचेतन अवचेतन के अन्धेरे प्रकोष्ठों में नहीं की है । प्रेमचन्द की तरह उन्होंने भी भाषा की सम्भावनाओं को जिये जा रहे जीवन के अन्दर से ही खोजने का प्रयत्न किया है । उन्होंने लोक भाषा की शक्ति को पहचान कर परम्परागत भाषिक रुचि से अपनी रचनाओं को मुक्त किया । उन्होंने जिन लोगों की कहानियाँ लिखी है, उन्हीं की भाषा का यथा-सम्भव प्रयोग करने की कोशिश भी की है । मृत्यु से लगभग पाँच वर्ष पूर्व मधुकर सिंह से बातचीत करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा था कि गाँव-गाँव घूमकर ही उन्हें लोक भाषा की शक्ति को समझने का मौका मिला ।[47] रेणु को 'शुद्ध', 'शिष्ट' और 'साहित्यिक' भाषा की मृत्यु का एहसास हो चुका था । इसी कारण, उनसे जहाँ तक हो सका, उन्होंने जीवन्त लोकभाषा से अपनी रचनाओं को प्राणवान बनाने की कोशिश की । 'तीसरी कसम' के हिरामन की तरह उनका भी विश्वास था कि ''कचराही बोली में दो चार सवाल - जवाब चल सकता है, दिल - खोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है किसी से ।''[48]

47- सारिका, मार्च, 1971, पृ० 7

48- ठुमरी, पृ० 111

रेणु की कहानियों और उपन्यासों की भाषिक भित्ति तो खड़ी बोली की ही है । संवादों या पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिये उन्होंने स्थानीय ग्रामीण शब्दों तथा अंग्रेजी और उर्दू के बिगड़े हुए या तद्भव रूपों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है । यदि यहाँ भी वे परिनिष्ठित भाषा प्रयुक्त करते तो कथा में 'यथार्थ का भ्रम' उत्पन्न नहीं होता और सारा वर्णन अस्वाभाविक और अयथार्थ दीखता । दूसरी ओर यदि वे मैथिली, मगही आदि स्थानीय बोलियों का उसी रूप में प्रयोग करते जैसा कि उनके कथांचल के लोग वास्तव में बोलते हैं तो उनकी भाषा हिन्दी के व्यापक पाठक समुदाय के लिये दुर्बोध होती । अतः उन्होंने एक बीच का रास्ता अपनाया । उन्होंने 'गाँव की बोली' को 'कचराही' में बदलकर भी उसकी लय और जीवन्तता को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया । भाषा के संबंध में अपनी इस नीति और प्रविधि को रेणु ने डा० लोठार लुट्से के प्रश्नों का उत्तर देते हुए स्वयं ही स्पष्ट किया है :—

''देखिए, यों जब साधारण जनता की बात कहनी हो, जब वे लोग बोलते हैं, तब तो ज़ाहिर है कि अपनी गाँव की बोली में बोलते हैं, मैथिली में बोलते हैं, मगही में बोलते हैं । मुझे लिखना पड़ता है उसको हिन्दी में । तो अगर मैं उसको शुद्ध, व्याकरण सम्मत और पंडिताऊ भाषा में लिखता हूँ, तो यह तो खुद कान में वैसा लगेगा कि यह एक गाँव का आदमी किस तरह से बोलता —— इतना शुद्ध बोलता है । और बिल्कुल वैसा या अशुद्ध लिखने से यह उपन्यास चल नहीं सकता है । तो बीच का कहीं एक रास्ता तैयार करना होगा । तो, जो वे लोग बोलते हैं कचहरी बचहरी में —— कचराही बोली कहते हैं उसे —— कचहरी की खिचड़ी भाषा में बोली जाने से कचराही बोली —— मैं ने इस्तेमाल किया है कई जगह इस कचराही बोली का । × × × वे अपने ढंग से बोलते हैं । पर उसी ढंग से रखें तो भी इन लोगों के गले से

नहीं उतरेगा —— सब कहेंगे कि यह तो बस रद्दी करके छोड़ दिया है, इनकी भाषा सीखने से तो हमारी भाषा खराब हो जायगी । मैं ने तो व्याकरण की दृष्टि से उसको सही रखा । फिर उसकी जो भाव की गति है, लय हो बोलने की, उसको मैं ने नहीं तोड़ा । है वह खड़ी बोली ही, लेकिन थोड़ा सा यह शब्दों का हेर - फेर कर देने से आपको सुनने में लगेगा कि उसकी लय पकड़ में आ जाती है । है वह खड़ी बोली, लेकिन लय उसकी अपनी है । और फिर जो शब्द अँग्रेजी का उसके पास चला गया है —— जैसे निस्पेट्टर : वह तो निस्पेट्टर ही बोलता है । आप उसको कहेंगे कि 'तुम अँग्रेजी बोल रहे हो', तो वह ऐसा नहीं समझेगा । वह तो निस्पेट्टर अपनी भाषा में बोलता है । तो उसको हम कैसे छोड़ देंगे ? वह तो उसकी अपनी चीज़ है । x x x अच्छा अँग्रेजी शब्दों के बारे में कहा ही, उर्दू शब्दों का भी कुछ ऐसा ही हुआ है । उन्हें भी मैंने जिस ढंग से बोले जाते हैं वैसे ही रखा है —— इतना खयाल करते हुए कि भाषा कहीं चौपट न हो जाय । इसीलिये 'ग्रामर' मैंने सही रखा । बाकी वाक्य बनाने में थोड़ा सा मैंने लय के लिये हेर - फेर कर दिया ।xxx तो मैंने ऐसा बीच का रास्ता अख्तियार करके लिखा —— कथा की ईमानदारी तक पहुँचने के लिये भी, उसको सच्चा बनाने के लिये भी । कई जगह तो डायलाग में चरित्र उभरकर आपके सामने आता है ।''[49]

रेणु की भाषा में ऐसे ग्रामीण शब्दों का या अँग्रेज़ी- उर्दू के 'बिगड़े हुए' शब्दों का बाहुल्य उनकी शैली की प्रमुख विशेषता बन गया है । उनकी कहानियों में बतकुट्टी, नेनू, गमकौआ, निसाफ (इनसाफ), जातरा (यात्रा), टैम (टाइम), लैन (लाइन), रमैन (रामायण), बामन, अलच्छन, कुलच्छन, मुहँजबानी, अखज-अदावत, फोकट, लाटफारम (प्लेट फार्म), पटपटांग, करकुट्ठा-काला, हह-हड़िया बज्जर, बिलेक - मारटिन (ब्लैक मार्केट), फिलिं इस्टार (फिल्म स्टार), डलेवर (ड्राइवर), मछकी - मुनसा, लहैगड़े - लौंडे, छदोड़ी,

49- 'रेणु का आत्म-साक्ष्य' (लोठार लुट्से से बातचीत) नया प्रतीक, जून, 1977

कहल-सुनल जैसे असंख्य शब्द मिलते हैं । कहीं - कहीं शब्दों की ध्वन्यात्मकता से ही उनके अर्थ का बोध होता है । 'तीर्थोदक' में केवल चौधरी का परिवार ही गाँव में किसी तरह ''टुटरस्टू' चल रहा है ।'' 'हाथ का जस बाक का सत्त' के जगू पंसारी बुढ़ापे में भी एक जवान 'तड़तड़' पहाड़िन को घर में बिठा लेता है । डा० कुमार विमल ने रेणु के इन भाषिक प्रयोगों को 'विपथनशीलता' की संज्ञा देते हुए लिखा है कि इसी ''विपथनशीलता ने रेणु की भाषा-शैली को विशिष्ट बना दिया — उसके बाह्य व्यक्तित्व के अनुरूप ही उसकी भाषा को 'अनन्वय' बना दिया, जिसमें शुद्धि और पांडित्य ने नहीं, अभिव्यक्ति की सटीकता और यथार्थानुकृति ने प्राथमिक महत्त्व प्राप्त कर लिया ।''[50]

यह विपथनशीलता अथवा भाषा संबंधी यह उदार अभिवृत्ति और उन्मुक्तता रेणु की शैली की प्रमुख विशेषता है । दुर्भाग्य से अधिकांश लोगों की दृष्टि इस विपथनशीलता, या उनके शब्दों में 'भाषा संबंधी असावधानी में ही उलझकर रह गई है और वे रेणु की भाषा की सृजनशीलता, संवेदनशीलता और सांकेतिकता की ओर कोई ध्यान नहीं दे सके हैं । रेणु भाषा प्रयोग के मामले में कत्तई असावधान नहीं हैं । सच तो यह है कि वे हिन्दी के उन इने गिने साहित्यकारों में से एक हैं जो भाषा के बारे में काफी सचेष्ट और जागरूक हैं । सम्प्रेषण-माध्यम के रूप में भाषा की अपूर्णता और सीमा के कटु यथार्थ से दो चार होकर ही उन्होंने भाषा के परम्परागत जड़ ढाँचे को तोड़ा और परिनिष्ठित शब्दों के स्थान पर गंवारू शब्दों के प्रयोग से उसमें नये प्राण भरने की कोशिश की । 'संवदिया' कहानी में रेणु हरगोविन संवदिया का परिचय देते हुए जब यह कहते हैं —— '' संवाद पहुँचाने का काम सभी नहीं कर सकते । आदमी भगवान के घर से ही संवदिया बनकर आता है । संवाद के प्रत्येक शब्द को याद रखना, जिस सुर और स्वर में संवाद सुनाया गया है, ठीक उसी ढंग से जाकर सुनाना, सहज काम नहीं ''[51] —— तो मानो सम्प्रेषण के संकट को ही रेखांकित करते हैं । रेणु इस संकट को पहचानकर अपनी कहानियों में इससे

50- कुमार विमल, 'रेणु की याद में' (नया प्रतीक, मार्च 1978)

51- फणीश्वरनाथ रेणु , 'मेरी प्रिय कहानियाँ' (~~xxxxxx~~ राजपाल एण्ड सन्ज़, दूसरा संस्करण, 1975)पृ070-71

जूझते नज़र आते हैं । उन्होंने ऐसी भाषा की तलाश की है जिसमें वर्णनात्मकता की अपेक्षा रचनात्मकता अधिक है । जो खुद बोलती है, जीवन के रहस्यों को खोलती है । 'तीन बिंदियाँ' में गीताली के मिस उन्होंने कविवर शमशेर बहादुर सिंह के शब्द उद्धृत करके जो दावा किया है — ''बात बोलेगी, मैं नहीं । राज़ खोलेगी बात ही'' —— उसमें कोई अतिश्योक्ति या मिथ्या दम्भ नहीं है । इस 'बोलती' रचनात्मक और सांकेतिक भाषा के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

'एक आदिम रात्रि की महक' में कामा गोपाल बाबू की घरवाली के बारे में अपना यह मत प्रकट करता है — ''बौमा का मिज़ाज तो इतना खट्टा था कि बोली सुनकर कढ़ाही का ताज़ा दूध फट जाय ।''[52] 'विघटन के क्षण' में 'शामा चकेवा' पर्व मनाए जाने के बाद ''एक चदरी भर सरदी पड़ गयी ।''[53] 'रस प्रिया' में जौधन गुरु जी की बेटी, बाल विधवा रमपतिया बारहवें साल में पाँव रखने पर विद्यापति के ''पदों का अर्थ समझने लगी थी ।''[54] 'सिरपंचमी के सगुन' में सिंघाय की बीबी टेढ़े फाल को रेलवे के मिस्त्री से ठीक करवाती है तो उसके घरवाले को हरबू से गाली के बदले गाली नहीं, 'लाल लोहे की तरह कलेजे पर बैठने वाला' यह ताना सुनना पड़ता है —'सिंघाय, यह रेलवे की गरमी बहुत देर तक नहीं रहेगी तुम्हारी ।''[55] 'तीसरी कसम' में हिरामन को लगता है कि हीराबाई की ''मुस्कराहट में खुशबू है'',[56] उसके साथ बतियाते समय उसे लगता है कि उसके ''मन में सतरंगा छाता धीरे-धीरे खिल रहा है'',[57] हीराबाई

52- आदिम रात्रि की महक, पृ० 51

53- वही, पृ० 10

54- ठुमरी, पृ० 16

55- वही, पृ० 96

56- वही, पृ० 110

57- वही, पृ० 114

के सामीप्य से जब उसकी आँखें तरल हो जाती हैं तो "डबडबाई आँखों से हर रोशनी सूरज मुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है"[58] तथा हीराबाई के चले जाने के बाद उसके होठों पर "'मरे हुए मुहूर्तों' की गूँगी आवाज़ें मुखर होना चाहती हैं।"[59]

रेणु ने अनेक स्थलों पर एक प्रकार से सान्द्रित भाषा का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त थोड़े से शब्द पाठक के मन में बहुत सारी प्रतिक्रियाओं को एक साथ उत्पन्न करके एक संश्लिष्ट अर्थबोध का कारण बनते हैं। 'तीसरी कसम' में चोर बाज़ारी का माल ढोते जब सारे काफिले के साथ हिरामन पकड़ा जाता है तो वह गाड़ी को वहीं छोड़कर बैलों के समेत भाग जाने का फैसला करता है। इस फैसले को वह कैसे कार्यान्वित करता है, इसका वर्णन रेणु इन शब्दों में करते हैं —— "'एक दो तीन। नौ दो ग्यारह।...."[60] भाषा की सान्द्रिता की दृष्टि से ये छः शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। "'एक दो तीन'" एक ओर उस नीलाम की बोली की ओर संकेत करते हैं, जिससे हिरामन आशंकित है। वह जानता है कि यदि वह पकड़ा गया तो उसके बैल अनेक दिन तक भूखे प्यासे रहने के बाद नीलाम हो जायगें। दूसरी ओर ये शब्द अपने संकल्प को कार्यान्वित करने के लिये हिरामन की तत्परता की ओर भी इंगित करते हैं। एक दो तीन — अर्थात् वह तैयार है। किस लिये ? नौ दो ग्यारह हो जाने के लिये, भाग जाने के लिये। इसी प्रकार 'तबे एकला चलो रे' में जब गाँव का एक प्रतिष्ठित बाबू एक गरीब औरत को दस रुपये का नोट दिखला कर फुसलाना चाहता है, तो इन रुपयों के सामने उस अबला की दरिद्रता और दीनता को रेणु ने इन शब्दों में रेखांकित किया है —— "तीन आने की हल्दी बेचकर,

---

58- वही, पृ0 124

59- वही, पृ0 140

60- वही, पृ0 107

इकन्नी का नून लेकर लौटती हुई संतोखी की बेवा दस रुपये का नोट देखकर काँप उठी थी ।''[61] इसी कहानी में पाड़े की माँ के लिये 'बथान की महिषी' का प्रयोग बहुत ही सार्थक है । 'महिषी' शब्द एक साथ भैंस और पटरानी शब्द का द्योतक होकर शब्द चयन के मामले में रेणु की सतर्कता की ओर संकेत करता है । रेणु सूक्ष्म और काव्यात्मक कथा स्थितियों के ऐसे वर्णन से, जो एक साथ यथार्थपरक और भावात्मक लगता है, हिन्दी गद्य की सम्भावनाओं को उद्घाटित करने में सफल हुए हैं । 'सिरपंचमी के सगुन' में सिंघाय विघ्न - बाधाओं के बाद भक्ति भरे मन से पूजा करने बैठता है । उसकी मनः स्थिति की ओर रेणु इन शब्दों में इंगित करते हैं — ''मुट्ठी - भर अक्षत लेकर, भक्ति भरे मन से सिंघाय ने पूजा की । पूजा करने में उसने जान-बूझकर ज़रा देर कर दी ।.... इस शुभ घड़ी को 'पसर' कर उपभोग न करे वह ।''[62] 'लाल पान की बेगम' कहानी के अन्त में बिरजू की माँ की इच्छा पूरी हो जाती है । उसका मर्द उसे बैल गाड़ी में बिठाकर नाच देखने के लिये ले जाता है । जंगी की पुतोहू को वह खुद मनाकर बेलगाड़ी में अपनी बगल में बिठाती है । उसके मन का सारा वैर, क्रोध, मैल अपने आप धुल जाता है उसे लगता है कि लाल पान की बेगम कहकर जंगी की पुतोहू ने उसकी प्रशंसा ही की है । कहानी के अन्तिम अनुच्छेद में रेणु ने इस सारी स्थिति को इन शब्दों में समेटा है :-

''बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों आँखों को केन्द्रित करने की चेष्टा करके अपनी रूप की झाँकी ली, लाल साड़ी की झिलमिल किनारी, मँगटीक्का पर चाँद ।.... बिरजू की माँ के मन में अब और कोई लालसा नहीं । उसे नींद आ रही है ।''[63]

61- आदिम रात्रि की महक, पृ0 33

62- ठुमरी, पृ0 95

63- वही, पृ0 156

रेणु का वाक्य विन्यास भी भाषा की सामान्य परिपाटी से कुछ हटकर लगता है । वे वाक्य में से कुछ शब्दों को उनके व्याकरण सम्मत स्थान से निकालकर वाक्य के अन्त पर अलग से रखते हैं । यह बात उनकी शैली की महज़ एक भंगिमा नहीं है । वे ऐसी बात के किसी एक पक्ष पर बल देने के लिये अथवा किसी बिन्दु को उभारने के लिये करते हैं । उदाहरण के लिये 'हाथ का जस और बाक का सत्त' का यह वाक्य लिया जा सकता है — ''गूलर का दूध और बाकल (वलकल) उस अनाम - शिशु - रोग की एक मात्र रामवान दवा है — आज भी ।''[64] 'आज भी' को वाक्य के आरंभ या मध्य में न रखकर अन्त में रखने से इस अर्थ की अनुमिति होती है कि वक्ता के अनुसार आज वैज्ञानिक विकास के युग में ऐसा नहीं होना चाहिए था । यदि इन दो शब्दों को परम्परागत व्याकरण के नियमों के अनुसार आरंभ या मध्य में रखा जाता तो वक्ता का उक्त मनोभाव उभर कर सामने नहीं आता । यही बात 'रस प्रिया' के इस वाक्य में देखी जा सकती है । —— ''विजया को कोड़कर उससे (चुरमुनियाँ से) और कोई काम नहीं ले सकता, उसकी माँ भी नहीं ।''[65]

परिनिष्ठित भाषा की अपेक्षा बोलचाल की भाषा में अधिक सम्भावनाएँ हैं । बोल चाल में लोग कभी - कभी संकेत भाषा अर्थात् कोड भाषा का भी प्रयोग करते हैं । रेणु के पात्र अपने संवादों में कहीं - कहीं इस कोड् भाषा का भी प्रयोग करते हैं । 'पंचलाइट' में मुनरी यह बताना चाहती है कि उसका प्रेमी गोधन पंचलेट बालना जानता है । पर गोधन का पंचायत ने हुक्का-पानी बंद किया है । अतः उसे पंचों से यह बात कहने का साहस नहीं होता है । तब वह चालाकी से अपनी सहेली कनेली के कान में बात डाल देती है — ''कनेली । चिगो, चिधइइ, चिन ।''[66] शुद्ध भाषा के आग्रही आलोचक कुछ समझें या न समझें, कनेली तीनों शब्दांशों के आगे से 'चि' हटाकर उन्हें गोधन

64- हाथ का जस, पृ० 120

65- आदिम रात्रि की महक, पृ० 11

66- ठुमरी, पृ० 81

के रूप में 'डिक्टेड' करती है और बात समझ कर पंचों से सम्बोधित होती है कि गोधन पंचलाइट बालना जानता है । रेणु के पात्र कभी कभी कोई अश्लील या अभद्र बात कहने के लिये भी इन कूट संकेतों का सहारा लेते हैं । 'आज़ाद परिन्दे' में लड़की स्कूल का चपरासी आवारा छोकरे हरबोला को डाँटते हुए कहता है — '' साला, यहाँ नाली में बेबी लोग 'तीन मिनट' करती है और तू देखता है ? भागो, साले ।''[67] 'नैना जोगिन' में रतनी रमेसर की माँ के साथ झगड़ती हुई कहती है कि रमेसर की माँ जिसका डर दिखलाती वह मुनसा'' रतनी का 'अथि' भी नहीं उखाड़ सकता ।''[68] इसी संदर्भ में उन शब्दों का भी उल्लेख हो सकता है जिन्हें रेणु के ग्रामीण पात्र स्वयं गढ़ते हैं । पेट्रोमेक्स के लिये वे 'पंचलैट' शब्द का प्रयोग करते हैं । अमरीका और रूस इन दो नामों को जोड़कर वे एक ही समस्तपद बनाते हैं 'मिरकास्स' । इत्यादि इत्यादि ।

रेणु की किसी - किसी कहानी में संवाद और चेतना प्रवाह के संश्लिष्ट रूपों को अलग करने वाले विभिन्न भाषिक धरातल एक साथ दृष्टिगोचर होते हैं । इस बात को 'नैना जोगिन' कहानी से उदाहरण देकर स्पष्ट किया जा सकता है । कहानी में वक्ता रतनी को अँधेरी रात में अमलतास और गुलमोहर के पौधे तोड़ते हुए पकड़ता है । वह संक्षिप्त शब्दों में, एक स्पष्ट और सपाट भाषा में मतलब भर बात करके उससे पूछ-ताछ करता है — क्यों तोड़ा है ? क्या मिला ? इस तरह मेरे पीछे क्यों पड़ी हो ? ऐसे गाँव में अब कोई भला आदमी कैसे रह सकता है ? इत्यादि इत्यादि । उत्तर में रतनी अनेक प्रकार की भाषा का प्रयोग करती है । कभी ग्रामीण भाषा में उससे पूछती है कि क्या भला आदमी को 'पुछ सिंग' होता है ? कभी उस पर व्यंग्य करती है कि जाइए, थोड़ा 'ब्रांडिल' और चढ़ाइए । कभी निडर और निर्लज्ज बनकर कहती है कि कोई उन दो को रात में इस तरह देखकर क्या करेगा ? ''देखकर आपका अथि' और मेरा 'अथि' उखाड़ लेगा ?'' कभी तीर की तरह चुभनेवाली

67- आदिम रात्रि की महक, पृ० 120

68- वही, पृ० 176

बात कहती है — ''वह तो पौधा ही है, जी तो आपको ही तोड़ देने को करता है।'' किन्तु इसी प्रसंग में, इन सब से अलग भाषा का एक और रूप भी दृष्टिगोचर होता है। भाषा का यह रूप, ये शब्द रतनी के मुख से नहीं निकलते, बल्कि वक्ता को लगता है कि रतनी का रोम रोम पुकार - पुकार कर उससे पूछ रहा है — ''.... बोलिए, मैं पापिन हूँ ? मैं अछूत हूँ ? रंडी हूँ ? जो भी हूँ, आपकी हवेली में पली हूँ.... तकदीर का फेर.... माधो बाबू..... रतनी नाम भी आपके ही बाबूजी का दिया है। आपने उसको बिगाड़ कर नैना जोगिन दिया। किस कसूर पर ?.... ''[69] इत्यादि।

इन शब्दों में भावातिरेकता है, पीड़ा और आक्रोश है। परिणामस्वरूप वक्ता के मन में अंकित रतनी की छवि धुँधली पड़ जाती है। अनेक रूपों से मिलकर बना उसका एक नया रूप उसके आगे उभरता है। और इस धरातल पर भाषा का एक नया रूप सामने आता है। शब्द व्याकरण और वाक्य के बंधन से मुक्त होकर एक संश्लिष्ट बिम्ब का निर्माण करते हैं —— ''पूछ-सिंग —जानवर— औरत -मर्द —— नंगे — बेपर्द —— अंधकार — प्रकाश —— गुर्राहट —आँखों की चमक — बड़े बड़े नाखून —— बिल्ली — शिवा —— शैवा —— गृद्धासया — योनिस्या भगिनी —— भोगिनी --- महाकुश —— स्वरूप — छिन्नमस्ता अट्टहास...... ''[70]

फणीश्वरनाथ रेणु की सम्पूर्ण शिल्प-चेतना की भाँति ही उनकी भाषा में भी 'शुद्धता' के प्रति अवज्ञा और विद्रोह झलकता है। मिश्रित शिल्प से ही नहीं, मिश्रित भाषा के प्रयोग के कारण भी उनकी कहानियाँ प्रभावपूर्ण और विशिष्ट बन गयी है।

69- वही, पृ० 180-81

70- वही, पृ० 181

अध्याय - 3

रेणु की कहानियों की सार्थकता

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही कहानी का मूल्यांकन भी उसकी शिल्पगत सफलता के आधार पर ही नहीं, उसकी सार्थकता के संदर्भ में भी होना चाहिए । फणीश्वरनाथ रेणु ने कथा शिल्प में कुछ ऐसे प्रयोग किए हैं जिन्होंने उनकी कहानियों को अभूतपूर्व कलात्मकता और विशिष्टता प्रदान की है । यह बात अपनी जगह महत्वपूर्ण होते हुए भी अलम् नहीं हो सकती है । रेणु की कहानियों के सही मूल्यांकन के लिये आवश्यक है कि बात उनकी शिल्पगत सफलता पर ही समाप्त न की जाय, बल्कि वर्तमान वास्तविकता के आलोक में उनकी सार्थकता की भी परीक्षा की जाय ।

रेणु की कहानियों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे एक कुशल या सफल कलाकार ही नहीं, एक सचेत और प्रतिबद्ध रचनाकार भी थे । कुछ अन्तर्विरोधों के बावजूद रेणु के कथा साहित्य में सार्थकता, अर्थवत्ता और सोद्देश्यता मिलती है । उनकी कहानियों में जहाँ यथार्थ की गहरी चेतना और वर्तमान विसंगतियों का तीव्र बोध मिलता है, वहाँ मानव के मंगलमय भविष्य के लिये एक बलवती इच्छा भी दृष्टिगोचर होती है । यह दूसरी बात है कि अपने कुछ पूर्वाग्रहों के कारण वे वर्तमान विसंगतियों को कहीं - कहीं उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने में असमर्थ रहे हैं । फिर भी रेणु की कहानियाँ हिन्दी की यथार्थवादी कथा परम्परा और जनवादी साहित्य का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

रेणु का यथार्थ बोध :

रेणु के कथा - साहित्य में जो बात सबसे पहले हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है उनका यथार्थ बोध । वास्तव में यथार्थवाद आधुनिक

उपन्यास कहानी का एक अविच्छिन्न तत्व है । ये साहित्यिक विधाएँ विश्वसंस्कृति को बूर्जुआ या पूंजीवादी सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण देन है । जार्ज लुकाच ने उपन्यास को आज के युग का महाकाव्य कहा है । महाकाव्य और उपन्यास दोनों में लेखक की विश्व दृष्टि कथा के माध्यम से व्यक्त होती है । परन्तु यथार्थवाद ही वह तत्व है जो आधुनिक कहानी - उपन्यास को प्राचीन महाकाव्य से अलग करता है । पश्चिम में यथार्थवाद का विवेचन दर्शन के क्षेत्र में भी हुआ है तथा कला और साहित्य चिन्तन के प्रसंग में भी । यथार्थवादी चिन्तक यह मानकर चलते हैं कि कला का संबंध बाह्य जगत् तथा इसके नाना रूप - व्यापारों से है, और इस बाह्य जगत का अस्तित्व हमारी इच्छा - अनिच्छा से परे एक स्वतन्त्र वस्तुगत यथार्थ है । इसके साथ ही यथार्थवाद साहित्य की सोद्देश्यता पर भी बल देता है । यथार्थवाद के मूल में साहित्य की समय और समाज सापेक्षता का सिद्धान्त है । जार्ज लुकाच के अनुसार सारे यथार्थवादी साहित्य पर अरस्तु की यह उक्ति पूरी तरह लागू होती है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । उसकी विशिष्ट वैयक्तिकता को भी उस संदर्भ से अलग नहीं किया जा सकता जिसमें उसकी सृष्टि हुई हो ।[1] इसका कारण यह है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण व्यक्ति और परिवेश के परस्पर विरोध से ही होता है । पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर में मानव व्यक्तित्व का विभाजन मानवता के सत्व की विकृति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । अतः यथार्थवादी कलाकारों और लेखकों ने पूंजीवादी संस्कृति का विरोध यथार्थ के चितेरों के रूप में ही नहीं, महान मानवतावादी बनकर भी किया ।

रेणु एक यथार्थवादी कथाकार हैं । उनका कथा - संसार समाजशास्त्रीय प्रतिरूपात्मक संसार है । अर्थात् उन्होंने अपनी रचनाओं में मनुष्य

1- Georg Lukacs, 'The Meaning of Contemporary Realism' Page 19.

को उसके सामाजिक परिवेश में चित्रित करके इस वास्तविक संसार को ही, स्थापित करने का प्रयत्न किया है । उन्होंने किसी 'भीतरी' सत्य का दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिये कहानियाँ नहीं लिखी है । रेणु की कहानियों में हमारा परिचय लेखक के 'भीतरी जगत्' से न होकर बाह्य जगत् में विचरने वाले भाँति - भाँति के लोगों से होता है जो परस्पर और अपने परिवेश के साथ पूरी तरह जुड़े नजर आते है । रेणु किसी भी पात्र के व्यक्तित्व से यदि दूसरे व्यक्तियों और परिवेश से प्रभावित अंश को निकाल दिया जाय तो शेष कुछ भी नहीं बचेगा । उनकी समस्याएँ उनके परिवेश की ही समस्याएँ है । रेणु ने वर्ग भेद, वर्ण भेद, शोषण, गरीबी, जहालत, ऋण, बेकारी, देहाती और शहरी संस्कृति के मध्य संघर्ष, ग्राम संस्कृति का विघटन, साम्प्रदायिकता, राजनीतिक तथा अन्य प्रकार का भ्रष्टाचार, महाजनी सभ्यता की विकृतियाँ आदि सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के कच्चे माल से ही अपनी कथा-स्थितियाँ बुनी है और अधिकांश कहानियों में इन समस्याओं को उन्होंने इनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है । इनमें जहाँ वर्तमान व्यवस्था के प्रति असंतोष और क्षोभ के दर्शन होते है वहाँ मनुष्य की जिजीविषा तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ उसके संघर्ष में आस्था भी मिलती है । 'मन के रंग' कहानी का वक्ता, जो अपना गाँव घर छोड़कर शहर में नीम बेकारी की हालत में रहने पर विवश है, हमेशा कुढ़ता रहता है । परन्तु प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु से नाराज़ इसी व्यक्ति का मन अपने शिशु की किलकारियों से आह्लादित होती पिसारिन को देखकर अजाने प्रसन्न हो जाता है और जीवन की विषमता से जूझने के लिये उसमें नयी शक्ति और स्फूर्ति आ जाती है ।

डा० रामदरश मिश्र का मत है कि रेणु की अधिकांश कहानियों की धुरी प्रेम या सेक्स है । हालांकि उन्होंने दबे स्वर में यह भी स्वीकारा है कि इस सेक्स के साथ सामाजिक जीवन का कोई न कोई पहलू भी अवश्य जुड़ा होता है जो पार्श्व में पड़ जाने के कारण अपना प्रभाव नहीं छोड़ता ।[2] रेणु की

2- हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, पृ० 119

इन तथाकथित 'सेक्स केन्द्रित' कहानियों में उन्होंने 'रस प्रिया' और 'तीसरी कसम' को गिना है । इन कहानियों में मुख्य कथा की धुरी निःसंदेह प्रेम है । परन्तु, जैसा कि पिछले अध्याय में स्पष्ट किया गया है, प्रभाव की दृष्टि से रेणु की कहानियों में मुख्य कथा नहीं, समूची कथात्मक संरचना महत्वपूर्ण होती है । और रेणु की अन्य कहानियों की तरह इन कहानियों की समग्र संरचना भी सामाजिकता की भित्ति पर खड़ी है । 'रस प्रिया' में मिरदंगिया और रमपतिया के पार्थक्य का कारण मिरदंगिया की किसी भीतरी मानसिक गाँठ की अपेक्षा जाति-भेद का ठोस सामाजिक आधार है —— ''जोधन गुरुजी से उसने अपनी जान छिपा रखी थी ।''[3] मोहना मिरदंगिया का बेटा नहीं, जैसा कि डा० रामदरश मिश्र ने भ्रमवश निष्कर्ष निकाला है ।[4] कहने को तो मोहना का पिता बूढ़ा अजोधादास है जो मंडली की गठरी ढोता था ।[5] मगर ''मोहना की बड़ी-बड़ी आँखें कमलपुर के (जमींदार) नन्दू बाबू की आँखों जैसी हैं ।''[6] और कहानी में यह संकेत भी मौजूद है कि रमपतिया के आँगन में नन्दू बाबू का घोड़ा बारह बजे रात को - - - -''[7] तात्पर्य यह कि परस्पर आकर्षण के बावजूद गरीब लोगों का जाति भेद के कारण संबंध नहीं हो पाता पर ऊँची जाति के सम्पन्न लोगों की तो हर हालत में पौ बारह है । वे छोटी-बड़ी जाति की गरीब औरतों को आसानी से अपनी रखैल बनाकर रख सकते हैं । खैर, मोहना का पिता जो भी हो, वह अपनी माँ रमपतिया का बेटा है । उस जैसा सुन्दर और गुणवान बेटा पाकर उसकी माँ 'महारानी' है ।[8] मोहना एक प्रकार से छोटी जाति के निर्धन

3- ठुमरी, पृ० 16

4- हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, पृ० 119

5- ठुमरी, पृ० 20

6- वही, पृ० 21

7- वही, पृ० 17

8- वही, पृ० 21

लोगों के आशापूर्ण भविष्य का प्रतीक है । क्योंकि 'सवर्णों' के घर में नहीं, छोटी जाति के लोगों के यहाँ मोहना जैसे लड़की - मुँहा लड़के हमेशा पैदा नहीं होते है । ये अवतार लेते है समय - समय पर जदा जदा हि... ''[9]

'रस प्रिया' की मुख्य कथा में निहित इस अर्थ को यदि छोड़ भी दें, तो भी उसकी पूरी कथात्मक संरचना, मुख्य नाद के साथ - साथ उत्पन्न सहायक नाद, विभिन्न उपाख्यान एवं प्रसंग 'सेक्स केन्द्रीयता' के आरोप का खंडन करके उसकी समाज - सापेक्षता को रेखांकित हैं । परमानपुर में एक ब्राह्मण के लड़के को बेटा कहने पर पूँचकोड़ी मिरदंगिया की मारपीट होना, गरीब माँ के बेटे का सुन्दर और गुणवान होने के बावजूद भूखा और बीमार रहना, लोक कलाकारों को भिखारी समझा जाना — ये सारे प्रसंग दो प्रेमियों की एक कोमल कहानी को पूरे परिवेश की कहानी बनाते है । इसी प्रकार 'तीसरी कसम' में हिरामन और हीराबाई के आकर्षण और अलगाव की नियति को ग्रामीण - सामन्ती - समाज व्यवस्था (जिसका प्रतीक गाँव का मेला है जहाँ दोनों का मिलन होता है) एवं महाजनी अर्थ - व्यवस्था (जिसका प्रतीक व्यवसायिक मथुरा मोहन नौटंकी कम्पनी है जिसमें शामिल होने के लिये हीराबाई हिरामन को छोड़कर चली जाती है) के द्वंद्व के परिप्रेक्ष्य में देखना अधिक समीचीन होगा । प्रेम और अलगाव की इस कहानी के अर्थ को मिथक के स्तर पर खोलने वाली महुआ घटवारिन की अन्तर्कथा में भी महुआ जन-जीवन की सहजता और स्वच्छता की प्रतीक है और सौदागर क्रूर महाजनी मूल्यों का । कहानी के अन्त में जब हीराबाई इसी कथा की ओर संकेत करती हुई कहती है कि ''महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरुजी''[10] तो वह इसी व्यापक सामाजिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की ओर इशारा करती है । डा० रामदरश मिश्र ने और तो और , 'सिरपंचमी का सगुन'

9- वही, पृ० 12

10-वही, पृ० 136

को भी रेणु की उन कहानियों में गिना है जिनकी धुरी सेक्स है । यह कहानी तो स्पष्टतः नारी पुरुष के परस्पर आकर्षण की नहीं, दो व्यक्तियों (सिंघाय और कालू कमार) की आपसी शत्रुता की भी नहीं, अपितु बदलती हुई सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों में मानव सम्बन्धों के बनने और टूटने की प्रक्रिया की कहानी है । देहाती सामन्ती समाज के अपने नियम और कानून हैं । सिंघाय पूरे पाँच साल तक कालू कमार का 'सेन' बाकी रखता है । न अगहनी फसल में से उसे एक चुटकी धान देता है न रबी में मुट्ठी भर चना । कालू इस सब का बदला लेने के लिये ऐन सिरपंचमी के दिन, जिस दिन किसान जुताई का श्रीगणेश करते हैं, उसका फाल टेढ़ा करता है । जाति की बंदिश ऐसी है कि गाँव का ही नहीं, ज़िले भर का कोई लुहार या कमार ऐसे टेढ़े फाल को सीधा नहीं कर सकता है । लेकिन इन सामन्ती बंदिशों को नयी उभरती शक्तियाँ चुनौती देती हैं । गाँव के निकट रेलवे पुल बन रहा है और सिंघाय की धारवाली रेलवे के मिस्त्रियों से टेढ़ा फाल सीधा करवाती है । सिंघाय कालू कमार को नीचा दिखाता है । मगर शीघ्र ही दोनों आपसी मन मुटाव भूलकर साझेदारी में नया 'व्यापार' शुरू करने की बात सोचते हैं । रेलवे के मिस्त्री काम करते करते लोहे के छोटे - छोटे टुकड़े पानी में डाल देते हैं । सिंघाय से यह बात जानकर कालू कुलहाड़ों, भालों सरौतों आदि की दुकान खोलने का सपना देखता है और सिंघाय को नफ़ा की रकम में चार आने रुपया के हिसाब से भागीदार बनाने का सुझाव रखता है । अर्थात् पुरानी बंदिशें धीरे - धीरे ढीली पड़ रही हैं । पूंजीवादी अर्थ - व्यवस्था की नयी वास्तविकता रेल के जरिये शहर से गाँव में पहुँच रही है । पुराने रिश्तों और मूल्यों के स्थान पर रुपये - पैसे, नफ़ा - नुकसान के आधार पर नये रिश्ते बन रहे हैं । परन्तु आश्चर्य है कि डा० रामदरश मिश्र को यह कहानी भी 'सेक्स-केन्द्रित' कहानी ही नज़र आती है ।

रेणु पर आरोप लगाया जाता है कि उनके अनेक पात्र अकेले व्यक्ति हैं और आधुनिकतावादियों की तरह रेणु की रचनाओं में भी इस अकेलेपन

के प्रति एक अजीब तरह का मोह लक्षित होता है । 'मैला आँचल' का डा0प्रशान्त अकेला है, 'परती : परिकथा' का जित्तन अकेला है, 'जुलूस' की पवित्रा अकेली है । कहानियों में 'रस प्रिया' का पँचकौड़ी मिरदंगिया अकेला है, 'तीसरी कसम' का हिरामन अकेला, 'एक आदिम रात्रि की महक' का कारमा अकेला है । रेणु के ये पात्र एक तरह से अकेले अवश्य हैं । परन्तु इनके चरित्र के विकास के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिये उनकी छटपटाहट ही कथा को गति देती है । आरंभ में ये पात्र भले ही अपने अकेलेपन में कोई विलक्षण सुख अनुभव करते हों पर कथा के अन्त पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि उनकी नियति उनके आस-पास के लोगों, एक बृहद मानव समाज की नियति से अलग नहीं है । 'मैला आँचल' में होली के दिन जब डा0 प्रशान्त जेल काट कर घर लौटता है तो उसे यह देखकर दुख होता है कि गाँव का कोई बच्चा उसपर रंग नहीं डालता । उसका मन यह जानकर ग्लानि से भर जाता है कि गाँव वासियों के लिये वह अजनबी ही बना रहा । उसे एहसास हो जाता है कि गाँव के सीधे सादे लोगों के बीच उसकी विशिष्टता उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है । परन्तु जब कालीचरण अचानक बुरा न मानो होली है ''कहकर उसपर रंग फेंकता है और ''लाल सलाम । डागडर बाबू ।'' कहकर उसका अभिवादन करता है तो उसका मरा हुआ मन फिर से जी उठता है । इसी प्रकार 'जुलूस' की दीदी ठाकुरन, पवित्रा चटर्जी जीवन में बहुत कुछ सहने के बाद अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि उसका भाग्य लाखों करोड़ों दरिद्र लोगों के भाग्य के साथ जुड़ा हुआ है । भूखे, प्यासे, नंगे, दीन दुखियों के जुलूस में शामिल होकर ही उसके जीवन को सार्थकता मिल सकती है । 'एक आदिम रात्रि की महक' का 'रमता जोगी बहता पानी' अकेला लावारिस कारमा भी अकेलेपन से उबकर किसी दूसरे व्यक्ति, किसी परिवार, किसी बस्ती और किसी समाज के साथ जुड़ना चाहता है । और जो लोग परिस्थितिवश जुड़ नहीं पाते, वे भी 'रस प्रिया' के मिरदंगिया की तरह समाज के विकास और विकास की द्योतक नयी पीढ़ी के लिये मंगल कामना करते हैं ।

भवानी प्रसाद मिश्र ने रेणु के विषय में उचित ही कहा है कि ''उन्होंने जो कुछ लिखा उसका स्रोत कोई व्यक्तिगत दर्द या व्यक्तिगत मुक्ति की इच्छा नहीं थी । वे सार्वजनिक काम के कायल थे और उनका सारा लिखना मानो उसी पर मरहम लगाने और भरने की कोशिश थी ।''[1] ''रेखाएँ : वृत्तचक्र'' रेणु की आत्मकथात्मक, या आत्मविश्लेषणात्मक कहानी है । किन्तु इसमें भी लेखक ने अपने व्यक्तिगत दर्द के साथ - साथ अपने परिवेश की भी व्यथा - कथा कही है । उनकी आपबीती जगबीती से पूरी तरह अलग नहीं है । अपनी अन्तर्कथा को वाणी देने के साथ - साथ रेणु ने अनेक सामाजिक प्रश्नों को भी उभारा है । बेहोशी या नीम होशी की हालत में भी वक्ता को अपनी हालत की अपेक्षा जलधर (सिने गीतकार शैलेन्द्र ?), पुष्पलाल (कवि-कथाकार राजकमल चौधरी ?), उमा (लतिका रेणु ?) तथा अन्य असंख्य लोगों के हाल से आविष्ट और ग्रस्त रहता है ।

रेणु ने अनेक कहानियों में गाँवों के टूटने पर आवश्यकता से अधिक दुःख प्रकट किया है और कहीं कहीं तो वह इस बारे में बहुत ही भावुक हो गये हैं । क्या यह बात लेखक की इतिहास-दृष्टि के साथ - साथ उनकी नीयत के आगे भी प्रश्न -चिह्न नहीं लगाती ? क्या वे सामाजिक और ऐतिहासिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया को अस्वीकार नहीं करते ? नहीं, ग्रामीण संस्कृति के प्रति रेणु का मोह सामन्ती मूल्यों के समर्थन का नहीं, लोक - जीवन में उनकी आसक्ति और आस्था का सूचक है । रेणु को दुःख है कि पूँजीवाद के उदय से शहरों की कृत्रिम और बाजारू संस्कृति गाँवों की मिट्टी में रची बसी लोक - संस्कृति को स्थानापन्न कर रही है । कहीं कहीं रेणु ने अवश्य सामन्तवाद के अवशेषों यथा

1- भवानी प्रसाद मिश्र, 'संवेदनशील रेणु' (रेणु: सम्मान और श्रद्धांजलि' में संकलित, पृ० 9)

गाँवों की बड़घरिया हवेलियों ('विघटन के क्षण'), बड़ी हवेलियों की टूटी ड्योढ़ियों ('संवदिया'), ऊँची ड्योढ़ियों के राज के जमाने ('तीसरी कसम' में हिरामन नामलगर ड्योढ़ी के जमाने को याद करके आह भरता है —'जा रे जमाना ।) आदि का 'नास्टैलजिक' लगाव के साथ वर्णन किया है । फिर भी उन्होंने इनके अवश्यम्भावी विनाश को पहचान लिया है । अपनी सहानुभूति के बावजूद रेणु ने इनके विघटन को इतिहास का अनिवार्य फैसला मानकर स्वीकार किया है । इस दृष्टि से रेणु और महान यथार्थवादी कथाकार बालज़क में एक निराला सादृश्य मिलता है । अनेक अन्तर्विरोधों के बावजूद भी बालज़क की यथार्थ-दृष्टि की ओर संकेत करते हुए एंगेल्स ने मार्गरिट हार्कनिस के नाम अपने पत्र में लिखा था —

''उसका (बालज़क का) महान कृतित्व एक भद्र समाज के उस विनाश पर लिखे गये शोक गीत के समान है, जिसका उद्धार नहीं हो सकता है । यद्यपि उनकी सहानुभूति उस वर्ग के साथ है जिसका नाश अवश्यम्भावी है, फिर भी इस सारी सहानुभूति के बावजूद उनका व्यंग्य तभी पैना बन जाता है जब वह सामन्त वर्ग के ही नर नारियों का चित्रण करता है । अपने उपन्यासों में उसने जिन लोगों की खुली प्रशंसा की है, वे राजनीतिक दृष्टि से उसके सबसे बड़े विरोधी होते हुए भी आम जनता के ही प्रतिनिधि हैं । इस प्रकार बालज़क अपने राजनीतिक पूर्वाग्रहों और वर्गगत सहानुभूति के विपरीत जाने के लिये विवश होता है । उसने अपने प्रिय सामन्तों के पतन की अनिवार्यता को पहचान लिया था और उनका वह उसी रूप में चित्रण करता है । x x x मैं इसे यथार्थवाद की एक महान विजय मानता हूँ ।''[12]

रेणु के यथार्थबोध की चर्चा उनकी राजनीतिक कहानियों पर विचार के बिना पूरी नहीं हो सकती है । राजनीति से संबंधित पात्रों और स्थितियों को

12- Engles' letter to the English Novelist, Margret Harkness, cited by Ralph Fox in 'The Novel and the People' Foreign Languages Publishing House, Moscow, 1956) Page 106

लेकर लिखी कहानियों में रेणु ने किसी अस्पष्ट और द्वयर्थक शैली या शिल्प के माध्यम से नहीं, अपितु स्पष्टतः और एक सीमा तक 'पार्टिज़न' रख अपना कर अपनी मान्यताएँ, अपनी पसंद और ना पसंदगी व्यक्त की है । इन कहानियों में जहाँ सामाजिक न्याय प्राप्त करने के उद्देश्य से राजनीतिक संघर्ष के लिये आतुरता मिलती है वहाँ राजनीति, या राजनीति में निहित स्वार्थों के कारण वितृष्णा भी झलकती है । रेणु के कृतित्व को विवादास्पद बनाने में इन कहानियों का बहुत हाथ है । इस बात की विस्तृत चर्चा रेणु की राजनीतिक दृष्टि के प्रसंग में आगे की जायगी ।

डा० रामविलास शर्मा ने 'मैला आँचल' और 'परती : परिकथा' के संदर्भ में रेणु के लेखन पर चर्चा करते हुए उनकी यथार्थदृष्टि में शंका प्रकट की है । उनके अनुसार रेणु की रचनाओं में यथार्थवाद की अपेक्षा प्रकृतवाद के दर्शन होते हैं । उनका कहना है — ''उसकी ('मैला आँचल' की) चित्रण पद्धति यथार्थवाद से अधिक प्रकृतवाद के निकट है । गतिशील यथार्थ में कौन से तत्त्व अधिक प्रगतिशील है, कौन से मरणशील, किन पर व्यंग्य करना चाहिए, किन का चित्रण अधिक सहानुभूति से करना चाहिए, वातावरण, घटनाओं आदि के चित्रण और वर्णन में कितनी बातें छोड़ देनी चाहिए और कितनी का उल्लेख होना चाहिए — कथा - शिल्प की इन विशेषताओं में 'मैला आँचल' का लेखक प्रेमचन्द की परम्परा से दूर जा पड़ा है ।''[13] परन्तु अगले ही अनुच्छेद में डा० रामविलास शर्मा अपने इस मत का स्वयं खंडन करते हुए, या कम से कम उसमें आंशिक संशोधन करते हुए लिखते हैं — ''फिर भी 'मैला आँचल' का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो उसे प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ता है । बहुत कम उपन्यासों में पिछड़े हुए गाँवों के वर्ग - संघर्ष, वर्ग-शोषण और वर्ग अत्याचारों का ऐसा

13- डा० रामविलास शर्मा, 'प्रेमचन्द की परम्परा और आँचलिकता', लेखक के निबंध संग्रह 'आस्था और सौंदर्य' (किताब महल, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद) प्रथम संस्करण में संकलित, पृ० 119-20

जीता जागता चित्रण मिलेगा । यह उसका सबल पक्ष है । कमजोरियों पर ध्यान केन्द्रित करके उसके इस गुण को भुला देना उचित नहीं होगा ।''[14] डा०रामविलास शर्मा यह स्वीकार करते हैं कि रेणु सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक हैं । उनकी आपत्ति यह है कि लेखक इन समस्याओं को उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने में असमर्थ है । '' 'मैला आँचल' के लेखक का दृष्टिकोण यह है कि समाज में अन्याय है, अन्ध-विश्वास है, रचनात्मक कार्य करने के लिये विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है लेकिन प्रगति चमत्कार से ही सम्भव है, जनता या राजनीतिक पार्टियों के किए कुछ नहीं हो सकता है ।''[15]

डा० रामविलास शर्मा को 'मैला आँचल' में यदि गुण और दोष दोनों नजर आते हैं तो 'परती : परिकथा' में उन्हें दोष ही दोष दिखाई देते हैं । उन्होंने साफ कहा है कि '''परती : परिकथा' में 'मैला आँचल' के गुण प्रायः लुप्त हो गये हैं और दोषों का पूर्ण विकास हो गया है ।''[16] उनकी इस आपत्ति का प्रमुख कारण नायक जित्तन का चरित्र है जो विशाल परती की डेढ़ हजार बीघे ज़मीन का अकेला मालिक है और 'मूर्ख जाहिल और दुष्ट' गाँव वालों के बीच अपने को अकेला अनुभव करता है, इलियट के 'वेस्ट लैंड' के मछुआ राजा की तरह जिसका पुरुषत्व सोता ही रहता है । डा० शर्मा के अनुसार ''प्रायड - चिकित्सालय के आउट - डोर पेशेंट जित्तन को 'इलियट' की 'कावटेल पार्टी' की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हैं' और उसके बाग में 'एक नयी जाति का नागफनी उग आया है' — 'रेयर कैक्टस'। 'काली नागफनी' । सभी प्रतीकों से लैस है 'वेस्ट लैंड' का विफल मनोरथ मछुआ राजा ।''[17] यह है आपत्ति

14- वही, पृ० 120

15- वही, पृ० 123

16- वही, पृ० 126

17- वही, पृ० 129

का प्रमुख कारण । दूसरा और गौण कारण (या हो सकता है असल में यही मुख्य कारण हो) यह है कि रेणु ने कम्यूनिस्टों का मज़ाक उड़ाया है । पीताम्बर या कम्यूनिस्ट है जिसने मुसलमानों में मक़बूल अर्थात् लोकप्रिय होने के लिये अपना नाम 'मक़बूल' रखा है । वह लेनिन की तरह नुकीली दाढ़ी रखता है जिसे वह कैंची - रेज़र से लेनिन की फोटो सामने रखकर, उससे एकदम मिलाकर, खुद तराशता है । उर्दू बोलने की धुन में हर अक्षर के नीचे नुक्ता लगाता है । इस पर डा० रामविलास शर्मा ने टिप्पणी की है कि 'हास्य रस की सृष्टि करने में रेणु जी थोड़ा स्वयं हास्यास्पद हो गये हैं ।...[18] इस प्रकार का सनकीपन मक़बूल में ही नहीं, 'परती : परिकथा' के दूसरे पात्रों में भी मिलता है — स्वयं जित्तन में भी । बिम्मल मामा तो प्रत्येक अंग्रेजी शब्द का हिन्दीकरण करता है । 'डेमोक्रेसी' उसके लिये 'दिमाकृषि' है, 'प्रोड्यूस' और 'प्रस्तुत' को मिलाकर वह एक नया 'बिम्मलीय' शब्द गढ़ता है – 'प्रद्युस्य' । मगर डा० रामविलास शर्मा ने इसे बुरा नहीं माना है । सम्भवतः इसलिये कि बिम्मल मामा या दूसरे पात्रों के साथ रेणु ने कम्यूनिस्ट होने का लेबल नहीं लगाया है । वैसे डा० रामविलास शर्मा की आलोचना में, विशेषकर 'परती : परिकथा' के संदर्भ में कुछ सार अवश्य है । 'मैला आँचल' और 'परती : परिकथा' की विस्तृत चर्चा, हमारे विषय-क्षेत्र को देखते हुए, यहाँ अप्रासंगिक होगी । डा०राम-विलास शर्मा ने रेणु की कहानियों के विषय में कुछ भी नहीं कहा है । परन्तु जिस प्रकृतवाद का आरोप उन्होंने 'मैला आँचल' पर लगाया है वह इस उपन्यास से अधिक रेणु की दो कहानियों 'आज़ाद परिन्दे' और 'लफ़ड़ा' में दृष्टिगोचर होता है । इनमें लेखक ने सामाजिक विकृतियों को, उनके सही संदर्भ में अलग करके, एक प्रकार से उनमें रस लेते हुए, चित्रित किया है । 'आज़ाद परिन्दे' में तब भी शहरी छोकरों के आवारापन के सामाजिक कारणों की ओर संकेत मिलता है । 'लफ़ड़ा' में 'दि डायना गेस्ट हाउस' के रहने वालों और वहाँ की 'मैडम' के कुत्सित यौन विकारों को सभी संदर्भों से अलग करके जैसे पाठकों को उत्तेजित करने के लिये ही उनका चित्रण किया गया है । सौभाग्य

18- वही, पृ० 131

से रेणु की चार दर्जन से अधिक कहानियों में यह अपने किस्म की एक मात्र कहानी है । अतः प्रकृतवाद रेणु के कथा- साहित्य की सामान्य प्रवृत्ति न होकर उसका अपवाद है । रहा सवाल रेणु की रचनाओं से ध्वनित होने वाले व्यक्ति के वैशिष्ट्य के प्रति मोह और कम्युनिस्ट विरोध का । इसके कारणों के विश्लेषण आगे चलकर किया जायगा ।

प्रेमचन्द की परम्परा और रेणु :

हिन्दी साहित्य में शुरू से ही दो परस्पर विरोधी कथा प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं । एक ओर गिरिजा दत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' ('सरस्वती', दिसम्बर, 1903), बंग महिला की 'दुलाई वाली' (सरस्वती, मई, 1907) चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' जैसी दैनिक जीवन के विविध प्रसंगों के यथार्थ-चित्रण के आधार पर लिखी गई कहानियाँ मिलती है । दूसरी ओर रहस्यपूर्ण और रोमानी वातावरण की सृष्टि करने वाली और मानव जीवन के किसी गूढ़ (?) सत्य को प्रकट करने वाली किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' ('सरस्वती' जून 1900) या रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' ('सरस्वती', सितम्बर 1903) जैसी कहानियाँ भी मिलती है । इन दोनों कथा प्रवृत्तियों का पूर्ण परिपाक हमें प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानियों में मिलता है । प्रेमचन्द ने यथार्थ-चित्रण की प्रवृत्ति को सोद्देश्यता से जोड़कर हिन्दी में यथार्थवादी कथा परम्परा का सूत्रपात किया । दूसरी ओर प्रसाद ने रोमानी कथा - प्रवृत्ति का परिष्कार करके हिन्दी में भाववादी, और कुछ आलोचकों के अनुसार आदर्शवादी कथाधारा का प्रवर्तन किया । प्रेमचन्द के कथा संसार का इस वास्तविक संसार के साथ सम्बन्ध समाज-शास्त्रीय प्रतिरूपात्मक (Sociological representational) है और प्रसाद के कथा जगत का दार्ष्टांतिक (illustrative) तात्पर्य यह कि प्रेमचन्द ने मनुष्य का चित्रण उसके सामाजिक और ऐतिहासिक परिवेश में करके इसी संसार को प्रतिरूपायित किया है । दूसरी ओर प्रसाद के पात्र अपनी आस-पास की सामाजिक परिस्थितियों से कटे केवल अपने अन्तर्जगत में ही विचरण करते हैं और उनकी कहानियाँ जीवन को प्रतिरूपायित करने के हेतु नहीं, किसी विचार या भाव के

दृष्टांत-स्वरूप रची गयी लगती है ।

प्रेमचन्द हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का वह पड़ाव है जहाँ पहुँचकर पहली बार उपलब्धि का एहसास होता है । उन्होंने अपने दर्जनों उपन्यासों और सैकड़ों कहानियों में उत्तर-भारत के किसानों की दुर्दशा और शहरी मध्य वर्ग की कुरीतियों के यथार्थ चित्रण के साथ हिन्दी में आधुनिक कहानी और उपन्यास को भी जन्म दिया । कथ्य हो या शिल्प, प्रेमचन्द की सब से बड़ी शक्ति उनकी यथार्थ दृष्टि है । यह यथार्थदृष्टि न केवल प्रेमचन्द द्वारा अपने समय के भारतीय समाज के अनेक वर्गों के पात्रों, उनके आपसी सम्बन्धों, उनसे सम्बद्ध विविध समस्याओं, घटनाओं, परिस्थितियों, परिस्थिति जनित भावनाओं एवं विचारों के प्रामाणिक चित्रण में, अपितु उनकी सहज कथात्मक संरचना में, उनकी अकृत्रिम और अलंकरण रहित शैली में, शिल्प और भाषा की सम्भावनाओं को जिये जा रहे जीवन के अन्दर से ही खोजने के उनके प्रयत्नों में दिखाई देती है । हिन्दी में प्रेमचन्द के बाद उनके उत्तराधिकारियों में पहला और सबसे महत्वपूर्ण नाम यशपाल का है । स्वतन्त्रता से पहले प्रेमचन्द की परम्परा में यशपाल के अतिरिक्त अमृतलाल नागर, नागार्जुन, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', मन्मथ नाथ गुप्त आदि का उल्लेख हो सकता है; और स्वतन्त्रता के बाद के कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी, अमरकान्त, मोहन राकेश, कमलेश्वर, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, इब्राहीम शरीफ, मधुकर सिंह, जितेन्द्र भाटिया आदि बीसियों समकालीन लेखकों का । प्रेमचन्द की परम्परा वास्तव में कौनसी है ? इस प्रश्न पर तनिक मतभेद है । कुछ लोगों की मान्यता है चूँकि प्रेमचन्द ने अधिकतर गाँवों के विषय में ही लिखा है इसलिये बाद में लिखी गई ग्राम -कथाएँ ही प्रेमचन्द की परम्परा में आती हैं । इस मान्यता के अनुसार नगरों - महानगरों के जीवन को लेकर लिखी गई कहानियाँ प्रेमचन्द की परम्परा के प्रतिकूल जाती हैं । परन्तु तथ्य यह है कि जिस सृजनात्मक दबाव से उस महान कथाकार ने 'पूस की रात', 'अलग्योझा', 'कफन' आदि ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, 'उसी से 'मनोवृत्ति', 'शतरंज के खिलाड़ी',

'नमक का दारोगा' जैसे शहरी जीवन की कहानियाँ भी रची हैं – यद्यपि ऐसी कहानियों की संख्या अपेक्षाकृत कम । वास्तव में प्रेमचन्द की विशेषता उनके गाँवों नहीं, उनकी यथार्थदृष्टि और सोद्देश्यता है । शिल्प के स्तर पर उनकी यह यथार्थदृष्टि सहज कथात्मक संरचना और वस्तुपरकता में झलकती है । प्रेमचन्द की परम्परा वास्तव में यथार्थवादी कथासाहित्य की बृहत् परम्परा की ही एक कड़ी है जिसमें बालज़ाक, डिकेन्स, टालस्टाय, चेखव, गोर्की, थामस मान आदि की रचनाएँ आती हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु हर दृष्टि से और हर स्तर पर प्रेमचन्द की परम्परा से जुड़ते हैं । रेणु ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे प्रेमचन्द और टाल्स्टाय की किताबों से प्रेरणा पाते रहे हैं ।[19] प्रेमचन्द की तरह ही उन्होंने भी मुख्य रूप से ग्रामीण परिवेश को लेकर ही कहानियाँ लिखी हैं । सत्य तो यह है कि प्रेमचन्द के बाद रेणु ही दूसरे महत्वपूर्ण लेखक हैं जिन्होंने ग्रामीण जन जीवन को अपनी रचनाओं के विषय बनाया । कथ्य या विषय-चयन की दृष्टि से ही नहीं, शिल्प चेतना की दृष्टि से भी रेणु की गणना प्रेमचन्द स्कूल के अन्तर्गत हो सकती है । अपनी मिश्रित शिल्प की कहानियों में भी रेणु ने कथा की सहजता और वर्णन की वस्तुपरकता को अक्षुण्ण रखा है । और भाषा के मामले में रेणु ही प्रेमचन्द के परवर्ती कथाकारों में कदाचित उनके सर्वाधिक निकट हैं । प्रेमचन्द की तरह ही रेणु ने भी बोल चाल की चलती फिरती भाषा की सम्भावनाओं को पहचान कर अपनी कहानियों में उसी का प्रयोग किया है । परन्तु वर्ण्य विषय, शिल्प, या भाषा से अधिक जो बातें रेणु को प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ती हैं, वे हैं उनके लेखन की सोद्देश्यता, व्यक्ति को परिवेश के संदर्भ में समझने का उनका प्रयत्न, उनकी रचनाओं की समाज-सापेक्षता और उनकी यथार्थ दृष्टि । प्रेमचन्द की कृतियों की भाँति ही रेणु की कहानियों में दीन दुखी और शोषित जनों के लिये गहरी

19- देखिए मदन मोहन उपेन्द्र का लेख, 'धरती के परिकथाकार रेणु' ('रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि' में संकलित , पृ0 81)

करुणा मिलती है । प्रेमचन्द की तरह रेणु भी अपने समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से क्षुब्ध थे और उनमें परिवर्तन चाहते थे । इस परिवर्तन के लिये यदि वे कहीं - कहीं अपने पूर्वाग्रहों और व्यक्तित्व के अन्तर्विरोधों के कारण सही दिशा निर्देश नहीं दे सके हैं, फिर भी रेणु की निष्ठा और परिवर्तन के लिये उनकी आतुरता में संदेह नहीं किया जा सकता है ।

डा० रामविलास शर्मा के अनुसार रेणु की रचनाओं में ग्रामीण समाज के वर्ग संघर्ष, वर्ण विभेद और अत्याचारों का चित्रण उन्हें प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ता है । परन्तु एक सही दृष्टि का अभाव उन्हें इस परंपरा से दूर ले जाता है ।[20] प्रेमचन्द की परंपरा के संदर्भ में रेणु की भूमिका को डा० शिवकुमार मिश्र ने डा० रामविलास शर्मा की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझा है । उन्होंने प्रेमचन्द, निराला, और मुक्तिबोध की मृत्यु की तरह ही रेणु की मौत को भी एक सामाजिक हादसा माना है ।[21] उनके अनुसार रेणु ने अपनी कहानियों में खेत खलिहानों वाले असली भारत की व्यथा - कथा कही है । ''उसी की आशाओं, आकांक्षाओं, उसी के स्वप्नों और संकल्पों को, बड़ी गहरी सम्वेदना के साथ, बड़ी आत्मीय शैली में, उसके एक-एक रेशे से अपनी निकट की पहचान तथा एक दम अंतरंग रिश्ते को सूचित करते हुए उजागर किया है । वस्तुतः यही वह बिन्दु है जहाँ रेणु अपनी तमाम विशिष्टताओं के बावजूद प्रेमचन्द और उनकी परंपरा से जुड़ते हैं, भारत और उसकी मिट्टी से जुड़ते हैं, और यही वह संदर्भ है जहाँ उनकी मौत प्रेमचन्द की मौत की तरह, किसी अजनबी रचनाकार की मामूली मौत न रहकर, एक बहुत बड़ा सामाजिक हादसा बन जाती है ।''[21] डा० शिवकुमार मिश्र मानते हैं कि प्रेमचन्द और रेणु की रचना दृष्टि में अवश्य कुछ अन्तर है । दोनों का लेखन तदरूप न होकर समरूप है । इस अन्तर को वे इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं — ''.... प्रेमचन्द के यहाँ ब्यौरे नहीं हैं, रेणु के यहाँ ब्यौरे

20- 'प्रेमचन्द की परंपरा और आंचलिकता' ('आस्था और सौंदर्य' में संकलित पृ० 119-20)

21- 'प्रेमचन्द की परम्परा और फणीश्वरनाथ रेणु' (रेणु: संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित', पृ० 47)

22- वही, पृ० 49

हैं । प्रेमचन्द में ग्रामीण जीवन के चटख रंग नहीं हैं, जबकि रेणु ने चटख रंगों में ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है । प्रेमचन्द की दृष्टि मूलतः एक रचनाकार की दृष्टि रही है, जबकि रेणु के रचनाकार के साथ-साथ उनका कलाकार भी हमेशा प्रबुद्ध रहा है । दोनों के शिल्प में ही नहीं, सोच में भी कुछ अन्तर है, किन्तु ये सारे अन्तर उस शक्तिशाली एकीकृत को नहीं दबा पाते कि रेणु भी अपने कृतित्व में मूलतः भारत के गाँवों और उनकी नीरस बेजान और विकृत होती हुई जिन्दगी के प्रति 'कन्सर्न्ड' रहे हैं और प्रेमचन्द भी । इस 'कन्सर्न' की तीव्रता और गहराई दोनों में समान है ।''[23]

रेणु को प्रेमचन्द की परंपरा से बाहर मानने वालों, या उनके लेखन की सोद्देश्यता और प्रतिबद्धता पर शंका करने वालों में से कुछ लोग इसलिये नाराज़ हैं कि रेणु ने समाजवादी क्रान्तिकारी विचारधारा का विरोध न सही, एक विशिष्ट राजनीतिक दल की नीतियों और दाँव पेचों का विरोध तो किया है । जिस बिहार आन्दोलन को इस पार्टी ने प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी शक्तियों का षड्यन्त्र करार दिया था, रेणु उसी में शामिल हो गये थे । वस्तुतः किसी राजनीतिक दल की अल्पकालिक स्ट्रेटिजि की कसौटी पर रेणु की प्रतिबद्धता को कसना और उसे खोटा करार देना, रेणु के प्रति ही नहीं, समस्त जनवादी यथार्थवादी साहित्य के प्रति अन्याय होगा । इस प्रकार की अभिवृत्ति से रेणु बहुत क्षुब्ध थे और उन्होंने अपना आक्रोश इन शब्दों में व्यक्त किया था – ''मैं प्रतिबद्धता का केवल एक ही अर्थ समझता हूँ — आदमी के प्रति प्रतिबद्धता, बाकी सब बकवास है । xxx प्रतिबद्ध लोग कहते हैं, बढ़े हुए पाँव, उठे हुए हाथ ही काफी नहीं है । वे दिखना चाहते हैं कि उठे हुए हाथ में झंडा किस रंग का है... यह कैसी प्रतिबद्धता है ?''[24]

रेणु और राजनीति : अन्तर्विरोध :

पणीश्वरनाथ रेणु के लिये राजनीति 'दाल भात की तरह' रही है । एक लेखक के रूप में प्रतिष्ठित होने से पूर्व वे राजनीति में सक्रिय भाग लेते

23- वही, पृ० 50-51।

24- देखिए विश्वनाथ का लेख 'सबार ऊपरे मानुष सत्य ताहार ऊपरे किछु नाई ('रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि' में संकलित, पृ० 29)

रहे । वे बिहार सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य और सरगर्म कार्यकर्त्ता रहे । अपने राज्य और देश से बाहर उन्होंने नेपाल की राजनीति में भी दिलचस्पी ली थी । सन् 1950 में नेपाली कांग्रेस द्वारा चलाये गये राणा शासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह में रेणु भी शामिल हो गये थे और मुक्ति सेना की फौजी वर्दी पहनकर और बंदूक लेकर मोर्चे पर कूद पड़े थे और उन्होंने 'आजाद नेपाल रेडियो' के संचालन का भार अपने ऊपर लिया था । तात्पर्य यह कि राजनीति उनके अनुभव क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अंग थी । अतः स्वाभाविक है कि उन्होंने राजनीतिक समस्याओं और मुद्दों तथा राजनीति से सम्बद्ध पात्रों को लेकर कहानियाँ लिखी हैं । रेणु की इन राजनीतिक कहानियों में कौन सी 'राजनीति' मिलती है, इस पर विचार करना आवश्यक है ।

इसे मोहभंग कहिए या अन्तर्विरोध, राजनीति में सक्रिय भाग लेने वाले रेणु की राजनीतिक कहानियाँ यथार्थ में 'राजनीति विरोधी' कहानियाँ हैं । इन कहानियों में रेणु ने यह दर्शाया है कि राजनीति धूर्तों और बदमाशों का पेशा है । सभी राजनीतिक दलों में दुष्ट, धोखेबाज और निहित स्वार्थों के लोग घुसपैठ हो गये हैं । उन्हें जनता के दुःख दर्द के साथ कोई दिलचस्पी नहीं है । और न इसका कोई समाधान उनके पास है । ये राजनीतिक पार्टियाँ सिद्धान्तों और आदर्शों की दुहाई देकर परस्पर लड़ती हैं परन्तु उनका असली उद्देश्य अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये अपने अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार होता है । 'पुरानी कहानी : नया पाठ' कहानी में राजनीतिक दल और राजनेता बाढ़ की विभीषिका में भी अपना दलगत और व्यक्तिगत स्वार्थ साधते हैं और फलस्वरूप इस दैवी प्रकोप की भीषणता को और बढ़ाते हैं । घोर - विपत्ति में भी ये लोग सभी मानव मूल्यों की धज्जियाँ उड़ाते हुए अपनी स्वार्थसिद्धि को ही सर्वोपरि मानते हैं । बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के विधान सभा चुनाव में पराजित उम्मीदवार इस विनाशकारी बाढ़ को 'दैवी प्रकोप' नहीं 'दैवी वरदान' मानते हैं — ''इस क्षेत्र के पराजित उम्मीदवार, पुराने जनसेवक जी का सपना सच हुआ । कोसका मैया ने उन्हें फिर जनसेवा का 'औसर' दिया है ।... जै हो, जै हो । इस बार भगवान ने चाहा तो वे विरोधी को पछाड़

का दम लेंगे ।''[25] इस राजनेता से संकेत पाकर गाड़ीवान टोले के उनके कर्मठ कार्यकर्ता 'गुप्त कारवाई' करते है । फलस्वरूप बरदाहा बाँध टूट जाने के कारण और डेढ़ सौ गाँव डूब जाते है ।[26] अपने स्वार्थों के लिये विरोधी पार्टियाँ ही आपस में नहीं लड़ती है बल्कि एक ही पार्टी के विरोधी गुट भी एक दूसरे को नीचा दिखाने चाहते है — ''सभी राजनीतिक पार्टी के नेताओं ने अपने प्रतिनिधि का नाम दिया है – विजिलेंस कमिटि की सदस्यता के लिये । प्रायः सभी पार्टी में दो गुट है — आफिसियल ग्रुप, डिसिडेण्ट.... । हर कैम्प में एक दबा हुआ असंतोष सुलग रहा है ।''[27]

'आत्म-साक्षी' कहानी भी इसी प्रकार दलगत राजनीति के प्रति विरक्ति पैदा करती है । एक 'क्रान्तिकारी पार्टी' विभाजित होकर दो टुकड़ों में बँट गयी है । दोनों विरोधी गुटों के नेता कामरेड बलराम और कामरेड चन्द्रिका गाँव के पार्टी आफिस पर अधिकार जमाना चाहते है । दोनों एक दूसरे के लिये गद्दार, डिक्टेटरशाह, पेटी बुर्जुआ के बच्चे आदि विशेषणों का प्रयोग करते है । कौन सच्चा है और कौन झूँठा, इसका निर्णय गाँव का सीधा सादा कार्यकर्त्ता गनपत नहीं कर पाता है । वह सच्चाई जानना चाहता है पर उसे बताया जाता है कि यह 'साईं लेवल' और 'सिद्धान्त की लड़ाई' की बात वह नहीं समझ सकता ।[28] जो कामरेड कल तक एक दूसरे की प्रशंसा के पुल बाँधा करते थे आज एक दूसरे को गाली-गलौज दे रहे है, एक दूसरे पर कीचड़ - गोबर उछाल रहे है – यह एहसास गनपत को भीतर से तोड़ देता है और उसके मन में अचानक 'निशुन' की एक कड़ी गूँजने लगती है, ''तोरो जन्म अकारथ जाय मूरख ।''[29] उसकी आस्था टूट जाती है, उसका मोहभंग हो जाता है :–

''गनपत को लगताहै कि सूरज में भी दरार पड़ गयी है । दुनिया की हर चीज़ आज दो भागों में बँटी हुई सी लगती है । हर आदमी के दो टुकड़े,

---

25- आदिम रात्रि की महक, पृ० 74
26- वही, पृ० 76
27- वही, पृ० 78
28- वही, पृ० 159
29- वही, पृ० 163

दो मुखड़े और दरका हुआ दिल ।

जिन बातों को आज तक पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों और जंग बाज़ों की बात समझकर अनुसुनी कर देता था, आज वे ही बातें बार-बार याद आती है ।

गनपत, तुम्हारे लीडर लोग, यानी तुम्हारी पार्टी, जाति और धर्म को अफीम कहती है । मगर तुम्हारे लोग अपने बच्चे-बच्चियों की शादी किसी दूसरी जाति में क्यों नहीं करते ? लड़के की शादी में कामरेड रामलगन सरमा ने पचीस हजार रुपये तिलक में गिनवा लिया । तुम्हारी लीडरों के बच्चे दार्जिलिंग और देहरादून में पढ़ते हैं । तुम्हारे सेक्रेटरी की बीबी कांग्रेसी -मिनिस्टर होने के लिये जाति की गुटबंदी करती है । तुम्हारे तूफान जी ने मिल-मालिक से मिलकर मजदूरों की गर्दन पर छुरी - - - ''[30]

लगता है कि रेणु ने कम्युनिस्टों को 'नंगा' करने में कुछ ज्यादा ही उत्साह दिखाया है, यद्यपि सतर्कता बरत कर प्रायः उनका सीधे नाम नहीं लिया है । परन्तु उनकी आरंभिक कहानियों में यह सतर्कता भी नहीं मिलती है । 'बीमारी की दुनिया में' कहानी में रेणु वक्ता के माध्यम से कम्युनिस्टों के प्रति इन शब्दों में अपना रोष प्रकट करते हैं — ''ये कम्युनिस्ट । 1942 की क्रान्ति में रोड़े अटकाने वाले क्रान्ति विरोधी ।''[31] इस 'कम्युनिस्ट फोबिया' का एक कारण रेणु की अपनी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी की नीति और स्ट्रेटिजी भी हो सकती है । मगर उन्होंने कम्युनिस्टों के साथ-साथ दूसरे राजनीतिक दलों को भी कोसा है । और तो और, उन्होंने अपनी सोशलिस्ट पार्टी को भी नहीं बख्शा है ।

कहा जा सकता है कि राजनीतिक दलों की असलियत को रेणु ने भीतर से देखा था । सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता होने के कारण ही उन्हें सक्रिय राजनीति से वितृष्णा हो गयी थी । इसीलिये उन्होंने सन् 1952 में लम्बी बीमारी के बाद राजनीति से सन्यास ले लिया और साहित्य सृजन में जुट गये । लेकिन यहाँ पर एक बार फिर रेणु के जीवन और जीवन-दर्शन का अन्तर्विरोध हमारे सामने

30- वही, पृ० 167

31- 'विश्वमित्र' कलकत्ता, दिसम्बर, 1946, पृ० 28

प्रकट होता है । यदि राजनीति से उनका मोहभंग हुआ था तो बीस वर्षों के बाद वे फिर कैसे सक्रिय राजनीति में लौट आये ? क्यों उन्होंने सन् 1972 में बिहार विधान सभा के लिये चुनाव लड़ा ? सन् 1974 में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे बिहार आन्दोलन में किस मोह के कारण शामिल हो गये ? 'मैला आँचल' में 'मिट्टी के मोह' की बात करने वाला कथाकार क्यों अपने देश की मिट्टी छोड़कर विदेशों में राजनीतिक शरण लेने की बात सोचने लगा ।[32]

लगता है कि रेणु का कभी भी किसी भी प्रकार की राजनीति में कोई दृढ़ विश्वास या 'कनविक्शन' नहीं रहा है । राजनीति में सक्रिय भाग लेने के बावजूद राजनीति के प्रति उनका कुछ कुछ रोमानी दृष्टिकोण रहा है । वे निःसंदेह देश की वर्तमान अवस्था देखकर क्षुब्ध और इसके परिवर्तन के लिये आतुर थे । परन्तु यह आतुरता एक भावुक और संवेदनशील व्यक्ति की आतुरता थी । ऐसे लोग जल्दी ही क्रान्तिकारी पार्टियों की ओर आकृष्ट होते हैं और जल्दी ही उनका मोहभंग हो जाता है । रेणु की राजनीतिक विचारधारा के विषय में एक और बात ध्यान देने योग्य है । रेणु सक्रिय राजनीति में किसी राजनीतिक आस्था की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों के कारण जुड़ गये थे । इस सम्बन्ध में नेपाली नेता श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला ने एक दिलचस्प घटना बयान की है । सन् 1937 में वे अपनी पत्नी के साथ अपने घर विराट नगर (नेपाल) जा रहे थे । एक स्टेशन से गाड़ी खुलने पर उन्होंने देखा कि एक किशोर डिब्बे के बाहर हण्डी पकड़कर पायदान पर खड़ा ज़ोरदार वर्षा में भीग रहा है । उन्होंने उस पर तरस खाकर उसे डिब्बे के भीतर आने दिया । पारस्परिक परिचय के बाद वह उन लोगों से इतना घुलमिल गया कि उनके साथ ही विराट नगर चला आया । वहाँ वह उनके घर पर ही रहने लगा, और जब विश्वेश्वर प्रसाद के पिता स्व० कृष्ण प्रसाद कोइराला ने विराट नगर में नेपाल तराई का पहला स्कूल खोला तो उस किशोर

32- देखिए डा० शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव का लेख 'रेणु और बिहार आन्दोलन' (रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि' में संकलित, पृ० 102)

ने दाखिल होकर वहीं अपनी आरम्भिक शिक्षा पाई । यह किशोर कोई और नहीं, फणीश्वरनाथ रेणु ही थे ।[33] कोइराला बंधुओं के साथ ही रेणु उच्च शिक्षा के हेतु काशी विश्वविद्यालय में दाखिल हुए और यहीं आचार्य नरेन्द्र देव, डा० राममनोहर लोहिया आदि नेताओं के सम्पर्क में आकर राजनीति में शामिल हो गये और 1942 के आन्दोलन में जेल गये । 1942 आन्दोलन के नेताओं विशेषकर श्री जयप्रकाश नारायण के साथ रेणु का संबंध वैचारिक या सैद्धान्तिक होने की अपेक्षा भावात्मक अधिक था ।

रेणु एक आदर्शवादी स्वप्नद्रष्टा की निष्ठा और एक संवेदनशील व्यक्ति की आतुरता को लेकर राजनीति में शामिल हो गये थे । उनकी आतुरता देश की सामाजिक और आर्थिक विषमताओं के लिये कोई 'तुरन्त उपचार' या 'चमत्कार' चाहती थी । सक्रिय राजनीति से उनकी यह आकांक्षा पूरी नहीं हुई तो वे उससे विमुख हो गये । कुछ समय के बाद उनकी आतुरता फिर उन्हें राजनीतिक निष्क्रियता से सक्रिय राजनीति में वापस ले आई । हर नया राजनीतिक आन्दोलन उनमें नयी आशा का संचार करता था पर शीघ्र ही उनका मोह टूट जाता । विश्वनाथ के शब्दों में ''कुछ समय के लिये तो उन्होंने सोचा था कि शायद नक्सलपंथ ही ठीक है । पर यह भ्रम शीघ्र ही टूट गया ।''[34] यथास्थिति में किसी चमत्कारिक परिवर्तन के लिये रेणु की आतुरता, अथवा 'चमत्कारों' में उनके विश्वास का संकेत उस मनोरंजक प्रसंग से भी मिलता है जिसका जिक्र सुरेश शर्मा ने अपने संस्मरण 'रेणु: जीवन्त स्मृतियों के कुछ अधूरे शिला लेख' में किया है । सुरेश शर्मा ने लिखा है — ''एक दिन कॉफी हाउस में सोसलिस्ट रेणु दा को मैंने साँई बाबा की अँगूठी पहने हुए देखा । मैंने सप्रश्न जब उनकी उँगलियों पर निगाह डाली तो व्यंग्य और क्षोभ से

33- विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, 'रेणु और मैं', फणीश्वरनाथ रेणु की मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तक, 'नेपाली क्रान्ति कथा' (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1977) की भूमिका, पृ० 5-6

34- विश्वनाथ का लेख, सबार ऊपरे मानुष सत्य तार ऊपरे किछु नाई (रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित, पृ० 31)

भर कर उन्होंने मजाक में कहा - कि आपातकाल में शायद उसे धारण करने से जनता बदल के लिये उठ खड़ी हो ।''[35]

मार्च 1974 में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में बिहार आन्दोलन का आरंभ हुआ । रेणु ने इसमें सरगर्मी से भाग लिया । बीमार होने के बावजूद गर्मी की दोपहरी में मुंह पर पट्टी बांधकर 8अप्रैल के मौन जुलूस में शामिल हुए, सामूहिक अनशन पर बैठे, पर्चे, पोस्टर और बैनर लिखे और लिखवाए, नुक्कड़ कवि गोष्ठियों का आयोजन किया, गिरफ्तार हुए । 25 जून 1975 को आपातकाल की घोषणा हुई । रेणु भारत के उन इने -गिने बुद्धिजीवियों में से एक थे जिन्होंने इसका निर्भीकता से विरोध किया । पद्मश्री की उपाधि और बिहार सरकार से मिलने वाली पेंशन वापस की, भूमिगत रहे और 'रांड का बेटा सांड' नाम से एक लघु - उपन्यास लिखना शुरू किया जिसे, उसमें निहित स्पष्ट संकेत के कारण किसी प्रकाशक या मुद्रक को छापने की हिम्मत नहीं हुई । उनकी आतुरता और निष्ठा को यथास्थिति के घोर अन्धकार में जयप्रकाश बाबू की 'सम्पूर्ण क्रान्ति' में एक बार फिर रोशनी की किरण दिखाई दी । अस्पताल से भाग कर मार्च 1977 के मध्यावधि चुनावों में इमर्जेंसी को लादने वाली सरकार को पराजित करने की कोशिशों में अपना योगदान दिया । 22 मार्च को चुनाव के परिणाम स्पष्ट हो गये । सत्ता पर तीस वर्षों तक अधिकार जमाने और इमर्जेंसी लागू करने वाली कांग्रेसी सरकार का खात्मा हुआ । 24 मार्च को रेणु ने इस संतोष और सुख के साथ अपना आपरेशन करवाया कि आखिरकार यथास्थिति खत्म हो गयी । आपरेशन के बाद उनकी चेतना कभी नहीं लौटी और 11 अप्रैल 1977 को अचेत अवस्था में ही उनकी मृत्यु हो गयी । इसे उनका दुर्भाग्य कहें या सौभाग्य, वे नयी सरकार की कारगुजारी देखने के लिये जीवित न रहे । कहा नहीं जा सकता कि सरकार बदलने के बावजूद कायम यथास्थिति और जयप्रकाश बाबू की 'सम्पूर्ण क्रान्ति' की त्रासद परिणति देखकर उनकी क्या दशा

35- सुरेश शर्मा , ' रेणु : जीवन्त स्मृतियों के कुछ अधूरे शिलालेख' (रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित, पृ0 170)

होती ?

अपर रेणु की चमत्कारों में आस्था के प्रसंग में साँई बाबा की उँगूठी का जिक्र किया गया है । वास्तव में उनकी 'आस्था' का एक सूत्र उन्हें साँई लोगों, साधुओं और तन्त्रसाधकों से भी जोड़ता था । तन्त्रविद्या में रेणु की रुचि के विषय में कमलेश्वर का साक्ष्य है — '' वह आस्तिक है और शक्ति का उपासक । तन्त्रविद्या और तन्त्रसाधना में उसकी रुचि है... मौका तो मुझे याद नहीं, पर एक दिन पता लगा था कि रेणु तन्त्रसाधना में लीन है, और सिद्धि के लिये कर्मकाण्ड का पूरा आयोजन कर कुशासन पर आसीन है और अर्धरात्रि को कुक्कर की बलि देगा । तीन दिन तक रेणु से मुलाकात नहीं हुई थी, और मैं उसके बारे में तरह तरह की बातें सोचने लगा था ।''[36] स्वयं रेणु ने इस संबंध में मधुकर सिंह के प्रश्न का उत्तर देते हुए तन्त्रसाधना को अपना 'निजी' और 'व्यक्तिगत' मामला बताया है ।[37] वास्तव में रेणु के व्यक्तित्व में कई अन्तर्विरोध थे जो उनके कृतित्व में भी झलकते है । कभी वे प्रगतिशील नजर आते है, तो कभी पुरातनपंथी । कभी एक राजनीतिक प्रचारक और कभी राजनीति विरोधी व्यक्ति । कभी बिहारी तो कभी बंगाली । कभी भारतीय तो कभी नेपाली । कभी गाँव का एक उज्जड़ किसान और कभी शहर का सुसंस्कृत और नफासत पसंद बुद्धिजीवी । कभी सबके साथ रहकर सामाजिक जीवन जीने को इच्छुक आदमी और कभी घनिष्ट मित्रों के बीच भी अपने को अकेला अनुभव करने वाला एक विशिष्ट व्यक्ति ।

रेणु की नफासत पसंदी, या व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को बनाये रखने के प्रति उनकी सचेष्टा को लेकर काफी कुछ कहा गया है । कुछ लोगों ने

36- कमलेश्वर, 'मेरा हमदम मेरा दोस्त : फणीश्वरनाथ रेणु (नयी कहानियाँ, मार्च 1964, पृ0 68-69 ; अथवा 'फणीश्वरनाथ रेणु : श्रेष्ठ कहानियाँ', 'नये कहानीकार' पुस्तक माला, सम्पादक राजेन्द्र यादव, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, दूसरा संस्करण, पृ0 14)

37- सारिका, मार्च 1971, पृ0 87

रेणु के 'इस व्यक्ति - वैशिष्ट्य पर अनावश्यक बल देकर यह सुझाने का प्रयत्न किया है कि उनकी रचनाओं में दीनों दरिद्रों के लिये चिन्ता पाखंड मात्र है। डा० कुमार विमल का मत है कि ''वह (रेणु) पटना के काफी हाउस के शहरी गोल में प्रतिदिन घण्टों बैठने के अभ्यासी होकर भी ग्रामीण जीवन के ताज़ा यथार्थ पर साधिकार बातचीत कर लेते थे और स्वयं सुस्वादु भोजन, सुपाच्य मिष्ठान, अच्छे पेय और सुगंध - शृंगार जैसी कीमती अगरबत्ती के प्रेमी होकर भी उस अनपढ़ - अर्द्ध नग्न ग्रामीण जन की पीड़ा की वे तहाशा बातें कर पाते थे, जिसके पेट की अँतड़ियाँ अक्सर भूख से ऐंठती रहती है।''[38] दूसरी ओर निर्मल वर्मा रेणु की इस नफासत और विशिष्टता का सीधा सम्बन्ध उनके संस्कारों से मानते हैं — ''कुछ लोगों में एक राजसी, 'अरिस्टोक्रेटिक' गरिमा होती है, जिसका ऊँचे या नीचे वर्ग से सम्बन्ध नहीं होता — वह सीधे संस्कारों से सम्बन्ध रखती है। रेणु जी में यह अभिजात भाव एक 'ग्रेस' की तरह व्याप्त रहता था।''[39] निर्मल वर्मा के अनुसार रेणु ने किसी दल विशेष, या किसी विशिष्ट विचारधारा के चश्मे से संसार को नहीं देखा। उनके पास एक 'समग्र मानवीय दृष्टि' थी। वे एक सच्चे जनवादी लेखक होकर भी ''हाय हाय करते, छाती पीटते प्रगतिशील लोगों के आडम्बर से बहुत दूर थे, जो मनुष्यों की यातना को उसके समूचे जीवन से अलग करके अपने सिद्धान्तों की लेबोरेटरी में एक रसायन की तरह इस्तेमाल करते हैं। कितनी बड़ी विडम्बना थी कि मार्क्सवादी आलोचक, जिन्हें सबसे पहले रेणु जी के महत्व को पहचानना था, अपने थोथे नारों में इतना आत्मलिप्त हो गये कि जनवादिता की दुहाई देते हुए सीधे अपनी नाक के नीचे जीवन्त जनवादी लेखक की अवहेलना करते रहे।''[40]

38- डा० कुमार विमल, 'रेणु की याद में' 'नया प्रतीक' मार्च '78, पृ० 4

39- निर्मल वर्मा 'समग्र मानवीय दृष्टि' (रेणु की मरणोपरान्त प्रकाशित 'इगजल धनजल' की भूमिका), पृ० 14

40- वही, पृ० 17

कतिपय पूर्वाग्रहों एवं अन्तर्विरोधों के बावजूद फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य जनवादी और यथार्थवादी साहित्य की एक महत्वपूर्ण कड़ी है । हिन्दी में जब स्वतन्त्रता के बाद की पीढ़ी के अनेक कहानीकार और साठोत्तरी पीढ़ी के अधिकांश कहानीकार महानगर के सत्रास, जीवन की निरर्थकता, आदमी के अकेलेपन और अनास्था की कहानियाँ लिख रहे थे, रेणु ने सामान्य जन के सुख-दुःख की, उसकी कर्मठता और आस्था की कहानियाँ लिखकर एक प्रकार से पथभ्रष्ट हिन्दी कहानी को सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया । अपनी समग्र मानवीय दृष्टि से रेणु ने जीवन और जगत में कुण्ठा, संत्रास, अर्थहीनता न देखकर ममता, करुणा, निष्ठा, आस्था और सुन्दरता देखी । रेणु की कहानियाँ पढ़कर लगता है कि यह जीवन जीने योग्य है । यह संसार त्याज्य नहीं, ग्राह्य है । इस दृष्टि से रेणु और वैष्णव भक्तों में कुछ कुछ समानता दिखाई देती है । वैष्णव भक्ति का धार्मिक और दार्शनिक स्वरूप जो भी हो, उसका एक सामाजिक पक्ष भी था । वैष्णव भक्तों ने मनुष्य के रूप में ही ईश्वर की कल्पना की और उसके शील, सौंदर्य, शक्ति, माधुर्य आदि गुणों की प्रतिष्ठा भी मनुष्य में ही की । उन्होंने इस संसार को 'माया' या 'मिथ्या' न मानकर 'कर्मक्षेत्र' और प्रभु की 'लीला भूमि' माना । यह आकस्मिक नहीं कि रेणु ने 'नित्य लीला' कहानी में कृष्ण कथा का ही अपनी विशिष्ट शैली में पुनराख्यान किया है और कृष्ण की एक अनन्य लीला की मौलिक उद्भावना की है । कहानी पाठक के मन पर एक स्वस्थ और आशाजनक प्रभाव छोड़ती है कि संसार सुन्दर है, जीने और प्यार करने योग्य है । योगमाया के रूप में ही खोये हुए कृष्ण को पुनः पाकर ब्रजभूमि आनन्द विह्वल हो जाती है —

''आनन्द से सारा ब्रजमंडल जगमगाने लगा । किसन को घेरकर सभी नाचने लगे..... नन्द महर भी । जशोदा भी । और सलोना कभी घेरे के बीच में किसन के पास जाता है दौड़कर, फिर बाहर निकल वृत्त के चारों ओर दौड़ता है —— टिनिंग - टिनिंग.... ऊँ - यौं - यौं । ''[40]

41- ठुमरी, पृ० 77

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रभाव, यह ध्वनि, यह संदेश, इसी एक कहानी में नहीं, फणीश्वर नाथ रेणु के समस्त कथा - साहित्य में, किसी न किसी रूप में, व्याप्त है ।

●

— (इति) —

—

परिशिष्ट -1

संदर्भ ग्रंथ - सूची

फणीश्वर नाथ रेणु : कहानी - संग्रह

1- अग्नि स्नोर : संभावना प्रकाशन, हापुड़ (प्रकाशन काल अनुल्लिखित)

2- आदिम रात्रि की महक : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967

3- ठुमरी : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पंचम संस्करण, 1977

4- फणीश्वरनाथ रेणु : श्रेष्ठ कहानियाँ : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, दूसरा संस्करण, 1962

5- मेरी प्रिय कहानियाँ : फणीश्वरनाथ रेणु : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, दूसरा संस्करण, 1975

6- साथ का जस... (सम्पादित) : बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना, 1962

फणीश्वर नाथ रेणु : अन्य रचनाएँ

7- ऋणजल धनजल (रिपोर्ताज) : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977

8- कितने चौराहे (उपन्यास) : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966

9- जुलूस (उपन्यास) : भारतीय ज्ञानपीठ, 1965

10-दीर्घतपा (उपन्यास) : बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना, 1963

11-नेपाली क्रान्ति कथा (रिपोर्ताज) : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977

12-परती : परिकथा (उपन्यास) : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1957

13-मैला आँचल (उपन्यास) : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1954

सहायक पुस्तकें

14-	इन्द्रनाथ मदान (डा0)	: आधुनिकता और हिन्दी साहित्य	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1973
15-	कमलेश्वर	: नयी कहानी की भूमिका	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1966
16-	कुँवरपाल सिंह (डा0)	: हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना	पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1976
17-	कुसुम सोपट	: फणीश्वरनाथ रेणु की उपन्यास कला	वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968
18-	ज्ञानचन्द गुप्त (डा0)	: आँचलिक उपन्यास : सम्वेदना और शिल्प	अभिनव प्रकाशन, दिल्ली 1975
19-	नगेन्द्र (डा0)	: मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खंड)	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1965
20-	नामवर सिंह (डा0)	: कहानी : नयी कहानी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण 1973
21-	पूर्णदेव	: रेणु का आँचलिक कथा-साहित्य	आशा प्रकाशन गृह, नयी दिल्ली 1973
22-	मोहन राकेश	: बकलम खुद	राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली 1974
23-	राज रैना	: कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु	सीमान्त प्रकाशन , नयी दिल्ली 1976
24-	राजेन्द्र अवस्थी (सम्पादित)	: श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ	पराग प्रकाशन, दिल्ली 1974
25-	राजेन्द्र यादव (सम्पादित)	: एक दुनिया समानान्तर	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली 1966
26-	राजेन्द्र यादव	: कहानी : स्वरूप और संवेदना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1968

27- रामदरश मिश्र (डा0) : हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1977

28- रामबुझावन सिंह (रामवचन राय(सम्पा0) : रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि नवनीता प्रकाशन, पटना 1978

29- रामविलास शर्मा (डा0) : आस्था और सौन्दर्य किताब महल, इलाहाबाद 1883 शकाब्द (1961 ई0)

30- सच्चिदानन्द वात्स्यायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य राजकमल एण्ड सन्ज़, दिल्ली 1976

अंग्रेजी पुस्तकें

31- Booth, Wayne C. : The Rhetorics of Fiction University of Chicago Press, 1961

32- Bradbury, Malcolm : The Novel Today Fontana/Collins 1977

33- Forster, E.M. : Aspects of the Novel Pelican, 1976

34- Fox, Ralph : The Novel and the People Foreign Languages Publishing House, Moscow, 1956

35- Cuddon, J.A. : A Dictionary of Literary Terms Andre Deutsch, London Indian Book Company, New Delhi 1977

36- Hill, Knox C. : Interpreting Literature University of Chicago Press, 1966

37- Lukacs, Georg : The Meaning of Contemporary Realism Merlin Press, London 1972

38- Lukacs, Georg : Studies in European Realism Merlin Press, London 1972

39-	Roy Chaudhury,P.C.(Ed.)	: Bihar District Gazetteers Purnea	Secretariat Press,Patna, 1963
40-	Scholes,Robert & Kellog,Robert	: The Nature of Narrative	Oxford University Press 1966
41-	Shaw, Harry	: Dictionary of Literary Terms	McGraw Hill Book Company New York 1972
42-	Wellek,Rane & Warren,Austin	: Theory of Literature	Peregrine, 1976
43-	William,J.Handy & Westbrook, Max	: Twentieth Century Criticism : The Major Statements	Light and Life Publishers, New Delhi,1976
44-	William,Raymond	: Marxism and Literature	Oxford University Press,1977

पत्र - पत्रिकाएँ

आजकल	नयी दिल्ली
आलोचना	नयी दिल्ली
कल्पना	हैदराबाद
कहानी	इलाहाबाद
धर्मयुग	बम्बई
नई कहानियाँ	नयी दिल्ली
नया प्रतीक	नयी दिल्ली
विश्वमित्र	कलकत्ता
सारस्वती	इलाहाबाद
सारिका	बम्बई

लेख Sher,Stephan Paul- 'Notes Towards a Theory of Verbal Music' in 'Contemporary Literature' University of Oregon,Vol.xxii, Spring 1970, No.2(Special Number on Music & Literature)